जनवरी - जून 2016 वर्ष-48 अंक-1-2

मूल्य
20 रू.

वैज्ञानिक

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित

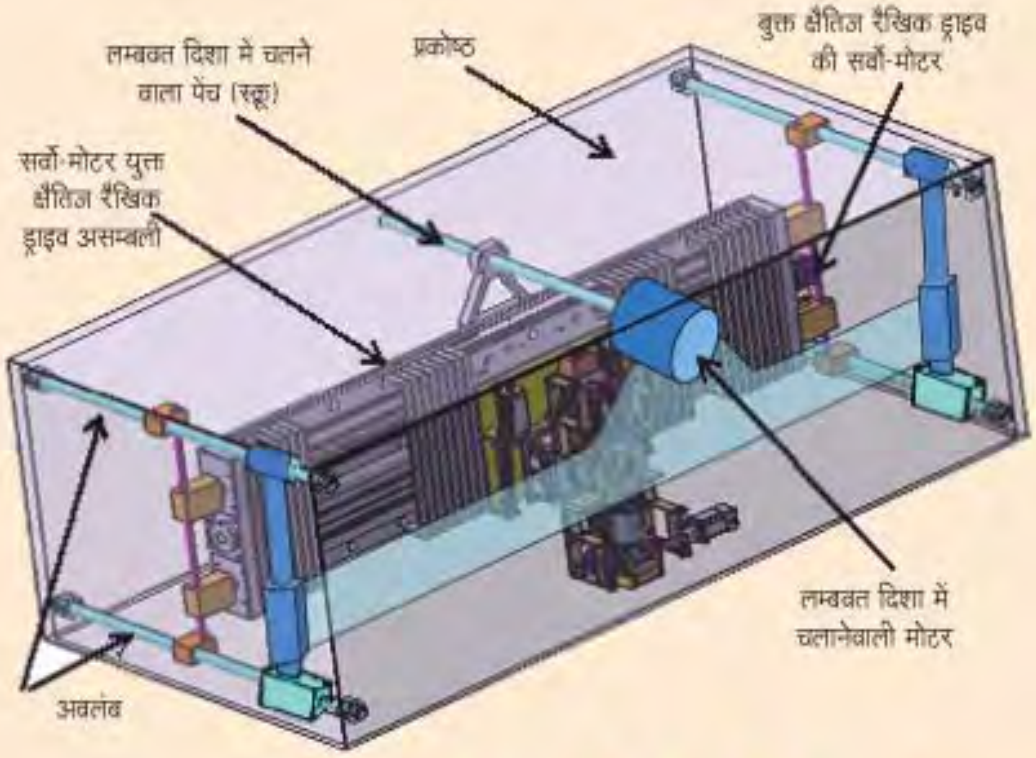

पानी भंडारण कुंड के अस्तर मरम्मत के लिए दूर नियंत्रित निरीक्षण मॉड्यूल इकाई

डॉ. विक्रम अंबालाल साराभाई

डॉ. होमी जहांगीर भाभा जिन वैज्ञानिकों को ढूंढ कर देश सेवा हेतु लाये थे उनमें से एक थे विक्रम अंबालाल साराभाई. जगप्रसिद्ध है कि वह विक्रम साराभाई ही थे जिन्होंने अंतरिक्ष अनुसंधान के क्षेत्र में भारत को अंतर्राष्ट्रीय मानचित्र पर स्थान दिलाया. लेकिन इसके साथ-साथ उन्होंने अन्य क्षेत्रों जैसे वस्त्र, भेषज, आणविक ऊर्जा, इलेक्ट्रानिक्स और अन्य अनेक क्षेत्रों में भी बराबरी का योगदान किया.

डॉ. विक्रम साराभाई का जन्म अहमदाबाद में १२ अगस्त १९१९ को एक समृध्द जैन परिवार में हुआ था. पिता का नाम श्री अंबालाल साराभाई और माता का नाम श्रीमती सरला साराभाई था. आपकी प्रारम्भिक शिक्षा उनकी माता द्वारा स्थापित मैडम मारिया मोन्टेसरी स्कूल में हुई. गुजरात कॉलेज से इंटरमीडिएट तक विज्ञान की शिक्षा पूरी करने के बाद वे १९३७ में कैम्ब्रिज (इंग्लैंड) चले गए जहां १९४० में प्राकृतिक विज्ञान में ट्राइपोज डिग्री प्राप्त की.

आप एक स्वप्नद्रष्टा थे और आपमें कठोर परिश्रम की असाधारण क्षमता थी.फ्रांसीसी भौतिक वैज्ञानिक पीएरे क्यूरी (१८५९-१९०६) जिन्होंने अपनी पत्नी मैरी क्यूरी (१८६७-१९३४) के साथ मिलकर पोलोनियम और रेडियम का आविष्कार किया था, के अनुसार डॉ.साराभाई का उद्देश्य जीवन को स्वप्न बनाना और उस स्वप्न को वास्तविक रूप देना था. इसके अलावा डॉ. साराभाई ने अन्य अनेक लोगों को स्वप्न देखना और उस स्वप्न को वास्तविक बनाने के लिए काम करना सिखाया. भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम की सफलता इसका प्रमाण है.

डॉ. साराभाई द्वारा स्थापित कुछ जानी-मानी संस्थाओं के नाम इस प्रकार है- भौतिकी अनुसंधान प्रयोगशाला (पीआरएल), अहमदाबाद; भारतीय प्रबंधन संस्थान (आईआईएम) अहमदाबाद; सामुदायिक विज्ञान केन्द्र; अहमदाबाद, दर्पण अकादमी फॉर परफार्मिंग आर्ट्स, अहमदाबाद; विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केन्द्र, तिरूवनंतपुरम; स्पेस एप्लीकेशन्स सेंटर, अहमदाबाद, परमाणु ऊर्जा विभाग हेतु फास्टर ब्रीडर टेस्ट रिएक्टर (एफबीटीआर) कलपक्कम; वैरीएबल एनर्जी साईक्लोट्रोन प्रोजक्ट, कोलकाता; भारतीय इलेक्ट्रानिक निगम लिमिटेड (ईसीआईएल) हैदराबाद और भारतीय यूरेनियम निगम लिमिटेड (यूसीआईएल) जादुगुडा, बिहार के स्थापन में योगदान रहा.

डॉ. साराभाई का देहांत कोवलम, तिरूवनंतपुरम (केरल) में ३० दिसम्बर १९७१ को हो गया.

संकलन : विपुल सेन

वैज्ञानिक

वर्ष - 48 अंक - 1–2

जनवरी - जून 2016

सम्पादक व व्यवस्थापक

श्री. विपुल सेन

सम्पादन मंडल

डॉ.कुलवंत सिंह
श्री.मनीष कुमार
श्री.सत्यवान बंसल
श्री.कवींद्र पाठक

♦ व्यवस्थापन मंडल ♦

श्री पी.एम.गांधी
श्री डी.एन.सिंह
श्री संजय गोस्वामी
श्री. अनिल अहिरवार
श्री. मुकेश गोयल

सदस्यता शुल्क आजीवन

व्यक्तिगत : 400
संस्थागत : 1000

भुगतान हेतु स्टेट बैंक आफ इंडिया खाता संख्या : 34185847362 IFS code : SBIN: 0001268
कृते : 'वैज्ञानिक, हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद'
Pay to : Vaigyanik, Hindi Vigyan Sahitya Parishad
कृपया सदस्यता हेतु ई-भुगतान की रसीद अथवा चेक भुगतान अपने पूरे पते के साथ व्यवस्थापक के पते पर भेजें।

कार्यालय

'वैज्ञानिक', हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेंट्रल कांप्लेक्स,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, ट्राम्बे, मुंबई-400 085

सभी पद अवैतनिक हैं

'वैज्ञानिक' में छपे लेखों का दायित्व लेखकों का है.

मूल्य : 20 रुपये

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय - 4

लेख

1. पानी भंडारण कुंड के अस्तर मरम्मत के लिए दूर नियंत्रित निरीक्षण मॉड्यूल इकाई - एक संकल्पना
   पी.के.मिश्र, अविराज पी.निर्मले, एन.एल.सोनी - 5
2. हरित गृह प्रभाव से जलवायु परिवर्तन
   डॉ.अखिलेश्वर कुमार द्विवेदी -10
3. 'इबोला' - एक दुर्दान्त घातक व्याधि
   राम प्रताप तिवारी -16
4. वैश्विक तापमान वृद्धि और प्रदूषण नियंत्रण
   डॉ.हेमलता पंत -27
5. जल प्रदूषण
   डॉ.ए.के.चतुर्वेदी -31
6. फंफूद से ही बनता है - जैव-विष
   डॉ.नवीन कुमार बोहरा -36
7. मेथी स्पर्श से रोग निदान
   डॉ.चंचलमल चोरडिया -38
8. एडीसन और उनके असफल आविष्कार
   मनीष श्रीवास्तव -40
9. अवरक्त प्रौद्योगिकी और उनके विविध अनुप्रयोग
   घनश्याम तिवारी -43
10. मानवता एवं पर्यावरण के लिए घातक जैविक हथियार
    मणि प्रभा -47
11. प्राकृतिक आपदाएं जो लील गयीं सभ्यतायें
    उत्तम सिंह गहरवार -50
12. जनहित में कृषि रसायन विज्ञान
    डॉ.दिनेश मणि -55

टिप्पणियां - बालकृष्ण काबरा 'एतेश' -58
1. चलें दस हजार कदम...
2. सामुद्रिक तापमान वृद्धि
3. रॉक साल्ट, फ्लोराइड और एनीमिया
4. तांबे की अद्‌भुत रोगाणुरोधक शक्ति

यह भी जानें - पूनम सेन -62
1. मरीज के कानूनी अधिकार
2. कांच का पुल
3. क्या कुछ वर्षों में दुनिया से गायब हो जायेगा केला

विज्ञान समाचार - संजय गोस्वामी -65
1. नाभिकीय संलयन पर शोध

वैज्ञानिक राजभाषा वर्ग पहेली -3

सम्पादकीय

विज्ञान और तकनीक के उपयोग से राष्ट्र निर्माण और विकास की नई अवधारणा इन दिनों पनप रही है. संचार क्रांति के इस युग में विज्ञान और वैज्ञानिक भी पीछे नहीं हैं. तरह तरह की नई खोज और अनुसंधानों से मानव जीवन को उन्नत बनाने की दिशा में कार्य चल रहा है. अनुसंधानों और खोजों को जन जन तक पहुंचाने के लिए विज्ञान संचार या संवाद का प्रयास देश के वैज्ञानिक कर रहे हैं ताकि विज्ञान जनकल्याण के क्षेत्र में उतर कर जन सामान्य तक पहुंचे. इसी दिशा में हमारी 'वैज्ञानिक' पत्रिका का यह प्रयास रहता है कि राजभाषा हिंदी के माध्यम से विज्ञान और तकनीकी को जन सामान्य तक पहुँचाया जाए. इसमें हम कितने सफल हुए हैं, यह मूल्यांकन आप सुधि पाठकों की प्रतिक्रिया से मालूम पड़ सकता है.

यद्यपि सापेक्षता सिद्धान्त की खोज भारत में 2000 वर्ष पूर्व हो चुकी थी, किन्तु प्रचार के अभाव में यह गौरव आइंस्टाइन को चला गया. इसलिए प्रख्यात वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टाइन के सापेक्षता सिद्धान्त के आविष्कार के 100 वें वर्ष में विज्ञान जगत में कई प्रकार की हलचलें महसूस की जा रही हैं. गुरूत्वीय तरंगों के अस्तित्व की भविष्यवाणी 1916 में आइंस्टाइन ने अपने सामान्य सापेक्षिक सिद्धान्त में की थी. उस कड़ी को आगे बढ़ाते हुए इस वर्ष वैज्ञानिकों ने गुरूत्वीय तरंगों की नई खोज कर ब्लैक होल के निर्माण का सुराग ढूंढा है, वहीं सौर मंडल में नवें ग्रह की खोज की है जो पृथ्वी से 10 गुना बड़ा है.

अंतरिक्ष के क्षेत्र से एक और खबर यह है कि वहां वैज्ञानिकों को फूल खिलाने में सफलता मिली है. अंतरिक्ष यात्री स्कॉट केली ने यह जानकारी विश्व को दी. जो पौधा अंतरिक्ष में उगा है वह सूर्यमुखी परिवार का है. इस तरह अंतरिक्ष में जीवन जगाने में विज्ञानियों को सफलता मिली है.

इसके अतिरिक्त 2016 के पूर्वार्ध में वैज्ञानिकों ने चिकित्सा, सौन्दर्य और रसायन शास्त्र सहित कई क्षेत्रों में नयी खोजों के जरिये सबका ध्यान खींचा है. चिकित्सा के क्षेत्र में कैंसर के इलाज के लिए प्रोटोन बीम थेरेपी, तो मस्तिष्क प्रत्यारोपण के लिए गेरोफिन की खोज से रोगों के निदान के लिए नए उपादान प्रस्तुत कर दिए हैं. उधर रसायन विज्ञान के क्षेत्र में चार नए तत्वों 113,115, 117 और 118 अणुभार वाले, यूननट्रियम, यूननपेन्टियम, यूननसेन्ट्रियम और यूनोट्रियम तत्वों को तालिका में जोड़ा है. इन सबके बीच 'वैज्ञानिक' का यह अंक कई प्रकार की विशिष्ठ सामग्रियों के साथ हम प्रस्तुत कर रहे हैं. इस अंक में अवरक्त प्रौद्योगिकी, ग्लोबल वार्मिंग, प्राकृतिक आपदाओं के कुप्रभाव, और इबोला जैसे घातक रोगों पर शोधपूर्ण आलेख समाहित किये गये हैं. हर बार की तरह विज्ञान समाचार और टिप्पणियां सहित विविध प्रकार की जानकारियों का यह गुलदस्ता आपके समक्ष है. आपको यह अंक कैसा लगा इसके प्रतिक्रिया की हमें प्रतीक्षा रहेगी.

पानी भंडारण कुंड के अस्तर मरम्मत के लिए दूर नियंत्रित निरीक्षण मॉड्यूल इकाई-एक संकल्पना

- पी. के. मिश्र, अविराज पी. निर्मले, एन. एल. सोनी

भुक्तशेष ईंधन भंडारण कुंड (एसएफएसबी) परमाणु ऊर्जा रिएक्टरों से खर्च ईंधन के लिए भंडारण कुंड है. वे आम तौर पर 10 मीटर गहरा होता है जो रिएक्टर से निकले गए ईंधन असेंबलियों को रखने के लिए भंडारण रैक से युक्त होता है. यह भुक्तशेष ईंधन भंडारण कुंड रिएक्टर में इस्तेमाल किए गए ईंधन असेंबलियों के भंडारण लिए विशेष रूप से तैयार किया जाता है और रिएक्टर स्थल पर ही स्थित होता है. भुगत शेष ईंधन बंडलों को रिएक्टर में उपयोग के बाद पुर्नप्रसंस्करण के लिए भेजे जाने से पहले पानी के नीचे 10-20 साल तक रखा जाता है. भुक्तशेष ईंधन छड़/बंडल तीव्र गर्मी और खतरनाक विकिरण उत्पन्न करते हैं. पानी उन्हें ठंडा रखता है और विकिरण से परिरक्षण प्रदान करता है. ईंधन आम तौर पर स्वचालित हैंडलिंग सिस्टम द्वारा रिएक्टर से बाहर निकाला जाता है और कुंड में स्थानांतरित किया जाता है. ईंधन या उसके आवरण को क्षति या क्षरण से रोकने के लिए पानी की गुणवत्ता दृढ़ता से नियंत्रित की जाती है.

भुक्तशेष ईंधन भंडारण कुंड मूलतः रूप से एक टैंक में टैंक की अवधारणा है. इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए SFSB के सभी तरफ एक बाहरी टैंक बनाया गया है. कुंड की भीतरी सतह (दीवार व फर्श) पर स्टेनलेस स्टील की लाइनर (अस्तर) प्लेटें प्रदान की जाती हैं. लाइनर प्लेटों का प्रयोजन कुंड के अंदर के पानी का बाहर की तरफ रिसाव के खिलाफ संतोषजनक रिसाव अवरोध सुनिश्चित करने के लिए है. कुंड का लाइनर की चादर फ्लैट तल पर 6.30 मिमी मोटी और खड़ी दीवारों पर 3.15 मिमी मोटी एसएस.304 एल (एसटीएम-ए-240 एसएस-304 एल) की होती है. इन प्लेटों का आकार 1250 मिमी x 2000 मिमी होता है. लाइनर प्लेटें अनील्ड होती हैं, सतह और चमकदार साफ व दोनों तरफ से कोल्ड रोलिंग वाली होती हैं.

दो टैंकों के बीच के स्थान को एक निरीक्षण गैलरी के रूप में प्रयोग किया जाता है. लाइनर की अखंडता की निगरानी के लिए एक रिसाव का पता लगाने वाले एवं एक संग्रहण प्रणाली की स्थापना भी की जाती है. इस प्रणाली में स्टेनलेस स्टील (एसएस 304L) के आयताकार अनुप्रस्थ काट वाले खोखले संरचनात्मक सदस्यों का एक नेटवर्क एक एम्बेडेड सनिन्वेश के रूप में एसएस 304L लाइनर चादर की वेल्डिंग के लिए इस्तेमाल किया जाता है. यह नेटवर्क 1.25 मीटर x 2.0 मीटर का एक ग्रिड है. लाइनर चादर खोखले वर्गों के मध्य भाग में वेल्ड की जाती हैं। खोखले अनुभाग में नियमित अंतराल पर छेद रहते हैं. रिसाव संग्राहक पाइप निर्धारित ढलान लिए हुए निरीक्षण गैलरी में समाप्त होते हैं.

भंडारण कुंड में संग्रहीत विकिरणित बंडलों के ऊपर 6.4 मीटर जल का आवरण विकिरण से कर्मिचों की रक्षा के लिए प्रदान किया जाता है, जबकि 4.9 मीटर जल के आवरण के साथ ऊपर की सतह पर विकिरण खुराक दर 0.05 एमआर/घंटा से कम है. ऊपर की सतह पर विकिरण स्तर को स्वीकार्य स्तर से नीचे रखने के लिए केवल 2.4 मीटर जल की आवश्यकता होती है, अतिरिक्त गहराई एक सुरक्षा अंतर प्रदान करती है और प्रचालकों की सुरक्षा के लिए किसी विशेष परिरक्षण के बिना ईंधन असेंबलियों के हस्तन की सुविधा मिलती है. भुक्तशेष ईंधन भंडारण कुंड में भुक्तशेष ईंधन बंडलों से निकलने वाली क्षय गर्मी को दूर करने के लिए एक शीतलन प्रणाली भी उपलब्ध कराई जाती है.

भुक्तशेष ईंधन भंडारण कुंड अस्तरों से रिसाव : सदैव जल से भरे हुए अन्य कुंडों के समान ही भुक्तशेष ईंधन भंडारण कुंड से यांत्रिक आघात, यांत्रिक तनाव, वेल्ड की विफलता और संक्षारण (जंग) इत्यादि कई कारणों से क्षरण (लीकेज) हो सकता है. यद्यपि कुंडों के जल के रसायनिकी बहुत ही सावधानी नियंत्रित की जाती है तथापि स्टेनलेस स्टील लाइनर वाले भुक्तशेष ईंधन भंडारण कुंड में संक्षारण अर्थात जंग से उत्पन्न दरार, विशेषतः प्रतिबल संक्षारण भंजन (Stress Corrosion Cracking)/एससीसी (SCC) एक मुख्य

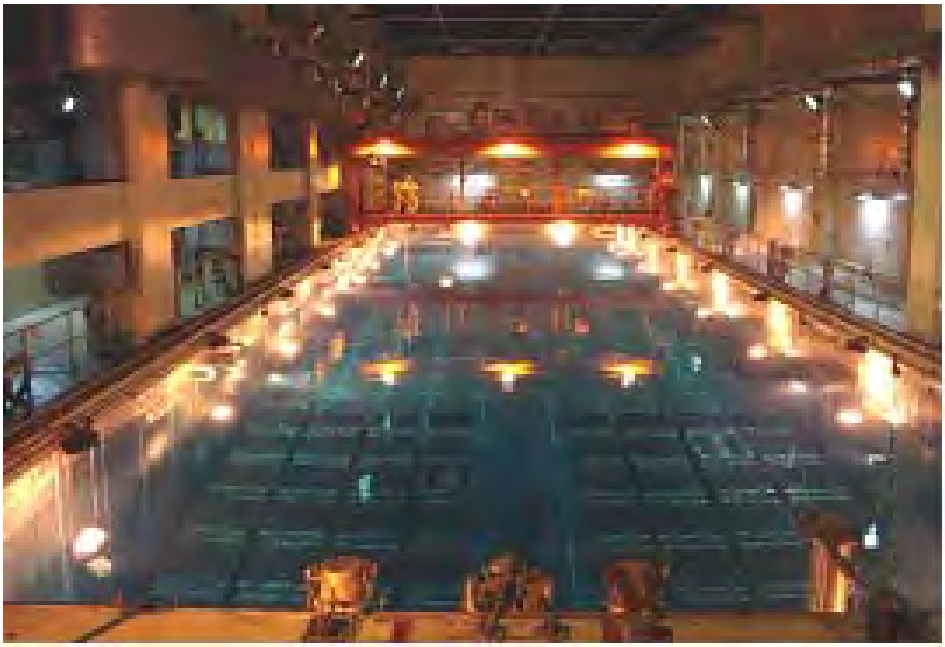

भुक्तशेष ईंधन भंडारण कुंड का दृश्य

समस्या है. एससीसी आमतौर पर वेल्डिंग लाइन के पास उष्मा प्रभावित क्षेत्र में होता है. भुक्तशेष ईंधन भंडारण कुंड के लाइनरों (अस्तरों) से रिसाव की स्थिति में संदूषित जल बाहरी कुंड/ संग्राहक में एकत्र होता है, जिससे भुक्तशेष ईंधन भंडारण कुंड में जल के स्तर में गिरावट होने लगती है, जिसे अतिरिक्त जल से पूर्ण करना पडता है. यह हानि धन की हानि के समान है. इसके अतिरिक्त यह जल भूमि में रिस कर पहुँच सकता है जिससे भूमिगत जल भी संदूषित हो सकता है. इन कारणों से लाइनरों के वेल्ड की जाँच एवं उसकी मरम्मत करना अत्यावश्यक हो जाता है. लाइनरों के वेल्ड की जाँच एवं उसकी मरम्मत में बहुत सारी चुनौतियां भी है जिनका उल्लेख नीचे किया गया है। भुक्तशेष ईंधन भंडारण कुंड के लाइनरों (अस्तरों) के वेल्ड की मरम्मत की चुनौतियांः

(क) कुंड की गहराई - सामान्यतः भारतीय PHWRs के भुगत शेष ईंधन भंडारण कुंड की गहराई 9-10 मीटर होती है.

(ख) कुंड में रेडियोधर्मी भुक्तशेष ईंधन की उपस्थिति :- कुंड में रेडियोधर्मी भुक्तशेष ईंधन 125 मिमी ऊँची 16 ईंधन भंडारण ट्रे में जो एक के ऊपर एक रखी होती हैं, रखा जाता है. इस ढेर (स्टैक) की कुल ऊँचाई 2.0 मीटर होती है। रेडियोधर्मी ईंधन से युक्त कुंड में इस गहराई में कार्य करना किसी मनुष्य के लिए बहुत ही असम्भव होने के साथ अनुज्ञप्त नहीं है।

(ग) कुंड का आकार : वेल्ड सीवन की पिच और लम्बाई सामान्यतः भारतीय दाबित भारी पानी अभिक्रियकों (रिएक्टरों) के भुक्तशेष ईंधन भंडारण कुंड का आकार लगभग 50 मीटर x 12 मीटर होता हैं. लाइनर प्लेटों के वेल्ड सीवन की पिच एक ही दिशा में सीधा 1.256 मीटर और 2.006 मीटर अन्य दिशा में है. इसमें प्रत्येक वेल्ड सीवन को समायोजित करने के लिए लाइनर प्लेट के चारों तरफ 6 मिमी का गैप भी शामिल है. इतनी बडी लम्बाई की वेल्ड सीवन का निरीक्षण करना वहुत ही श्रम एवं समय लेने वाला कार्य है.

(घ) लाइनर वेल्ड में दोष के प्रकार : यह माना जाता है कि रैखिक दरारें वेल्ड सीवन में या वेल्ड सीवन की उष्मा प्रभावित क्षेत्र के पास मौजूद हो सकती हैं. वेल्ड सीवन की चौड़ाई 6 + 3 मिमी लगभग है. दरार क्षेत्र में लगभग 20 मिमी (सुरक्षित मान्यताओं) की चौड़ाई के भीतर हो सकती है। यह दरार किसी यांत्रिक प्रभाव, अवशिष्ट तनाव, वेल्ड भंजन या प्रतिबल संक्षारण भंजन के कारण विकसित हो जाता है. इसके अतिरिक्त यांत्रिक समाघात या अपघात के कारण भी दोष यो दरार उत्पन्न हो सकती है. इस कारण पूरे लाइनर प्लेटों का निरीक्षण आवश्यक हो जाता है, जो कि बहुत ही दुष्कर है.

(च) दोष/विकार की खोज पडताल : लाइनर वेल्ड में दरारों/ विकारों की खोज के लिए विभिन्न पद्धतियों का

प्रयोग किया जा सकता है जैसे अल्ट्रासोनिक परीक्षण रेडियोग्राफी, भंवर धारा विधि (एड़ी करंट) वर्तमान विधियों, ध्वनिक उत्सर्जन तकनीक, प्रत्यावर्ती धारा क्षेत्र विधि, डाई पेनेट्रन्ट परीक्षण इत्यादि. पहुंच में कमी के कारण, दूरस्थ संचालन, डेटा की व्याख्या, पानी की मौजूदगी, पृष्ठभूमि विकिरण आदि की उपस्थिति जैसी कमियों के कारण इन तरीकों में से केवल अल्ट्रासोनिक परीक्षण और प्रत्यावर्ती धारा क्षेत्र विधि (ACFM) ही संभावित उम्मीदवार है.

(छ) वेल्डिंग विधि : मैनुअल वेल्डिंग भुक्तशेष भंडारण कुंड में संभव नहीं है। रिमोट वेल्डिंग तकनीक नियोजित किया जा सकता है। प्लक्स युक्त इलेक्ट्रोड के साथ वेल्डिंग करने के बाद कुडं से धातुमल हटाने के लिए एक अलग और अतिरिक्त व्यवस्था की आवश्यकता होगी. वेट वेल्डिंग तेजी से शमन के कारण वेल्ड धातु के लचीलेपन और संघात शक्ति में कमी के परिणामस्वरूप बेहतर नहीं होती है तथा साथ ही सरंध्रता (porosity) और कठोरता बढ़ जाती है. हाइड्रोजन भंगुरता (embrittlement) भी वेट वेल्डिंग की अतिरिक्त खामी है जहां विद्युत आर्क क्षेत्र में पानी के वियोजन

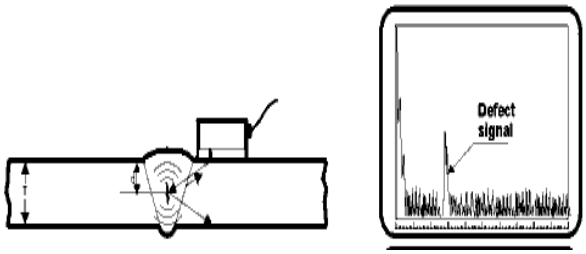

अल्ट्रासोनिक परीक्षण से प्राप्त दरारों का संकेत

के कारण हाइड्रोजन और ऑक्सीजन उत्पन्न होती है. हाइड्रोजन उष्मा प्रभावित क्षेत्र (HAZ) और वेल्ड धातु में घुल जाती है जो भंगुरता (embrittlement) और सूक्ष्म दरारें का कारक है. ये दरारें बढ़कर भयावह विफलता में परिणत हो सकती हैं. इसलिए वेल्डिंग विधि का चयन एक महत्वपूर्ण पैरामीटर है.

(ज) मरम्मत की प्रक्रिया के दौरान पानी और उत्पन्न मलबे को हटाना - मरम्मत की प्रक्रिया के दौरान पानी एवं उत्पनन्न मलबे जैसे सभी घिसाई चिप्स/कण आदि को हटाने की आवश्यकता होगी जिसे निर्वात (वैक्यूम) प्रक्रिया का उपयोग कर के ही हटाया जा सकता है.

लाइनर वेल्ड मरम्मत के विकल्प - लाइनर वेल्ड की मरम्मत के लिए दो विकल्प कप्रयोग किए जा सकते हैं जिनका विवरण नीचे दिया गया हैः

(क) चकती विधि - इस विधि में, दरार स्थान और आकार की पहचान के बाद, एसएस प्लेट के एक टुकड़े पर दोष क्षेत्र रखा जा सकता है और इसके चारों ओर से वेल्ड किया जा सकता है. यह प्रक्रिया घिसने वाले मॉड्यूल की आवश्यकता को समाप्त कर देती है और धार तैयारी की आवश्यकता नहीं होगी. चक़ती प्लेट पूर्व से ही तैयार हो सकता है. इससे पूर्व क्रमादेशित रोबोटिक वेल्डिंग मॉड्यूल का उपयोग करने में आसानी हो जाएगी. वेल्डिंग के दौरान पट्टी प्लेट को पकड़ने के लिए, दबाव लगाने के लिए, रोबोटिक वेल्डिंग के लिए और रोबोटिक हीलियम रिसाव का पता लगाने वाली प्रणाली वाले एक मॉड्यूल की आवश्यकता होगी जिसे हस्तन प्रणाली मे एक साथ जोड़ा जा सकता है. यह अतिरिक्त होगी.

इस विधि की कुछ कमियां भी हैं जैसे कि वेल्ड लंबाई और उष्मा प्रभावित क्षेत्र (HAZ) में काफी वृद्धि होगी. वेल्डन कार्य को अपेक्षाकृत तेज गति से पूरा करना होगा क्योंकि चकती के चारों ओर पूर्ण वेल्डिंग करने के लिए बहु-पास तकनीक किसी पूर्व-तापन या पूर्व-तापन उपकरण के बिना ही प्रयोग करनी पडेगी. भविष्य में उसी स्थान पर रिसाव होने की स्थिति में चकती पट्टी/प्लेट को पिछले वेल्ड की पूर्णतया घिसाई के द्वारा निकालने की आवश्यकता होगी. एक चकती पट्टी/प्लेट लगाने से किसी भी ट्रे लोडिंग संरचना में झुकाव पैदा होगा, जो बाद में ईंधन भंडारण ट्रे के हस्तन में कठिनाइयां पैदा करेगा.

(ख) घिसाई और नए वेल्ड द्वारा पुराने वेल्ड की मरम्मतः

इस विधि में, गैर विनाशकारी तकनीकों का उपयोग करके लाइनर की वेल्डमेंट में स्थित दरार का पता लगन पडेगा. पुराने वेल्डमेंट को आंशिक तरह से घिस कर नए वेल्ड की परत उस स्थान पर लगा दी जानी चाहिए. इस प्रक्रिया में घिसाई के दौरान उत्पन्न सभी चिप्स / कणों को हटाना होगा. उस स्थान के आसपास के संलग्न क्षेत्र को पूरी तरह से चकती विधि के जैसे ही पूरी तरह से सुखाए जाने की आवश्यकता पडेगी. पानी की अनुपस्थिति में एक स्वस्थ/ मजबूत वेल्ड की स्थापना हो सकती है जो किसी भी प्रकार के दोष से मुक्त होगा.

5.0 लाइनर वेल्ड मरम्मत की उपयुक्त प्रक्रिया का चुनावः-

ऊपर वर्णित दोनों विधियों का अध्ययन करने के बाद लाइनर वेल्ड की मरम्मत करने के लिए घिसाई और नए वेल्ड द्वारा पुराने वेल्ड की मरम्मत की विधि का चयन किया गया है और उसके लिए एक निरीक्षण व घिसाई मॉड्यूल की संकल्पना तैयार की गई है. इस लेख में इस निरीक्षण व घिसाई मॉड्यूल की संकल्पना का विस्तार से वर्णन किया गया है.

6.0 लाइनर वेल्ड मरम्मत के दौरान कुंड के अंदर किए जाने वाले कार्य : लाइनर वेल्ड मरम्मत के दौरान निमनलिखित

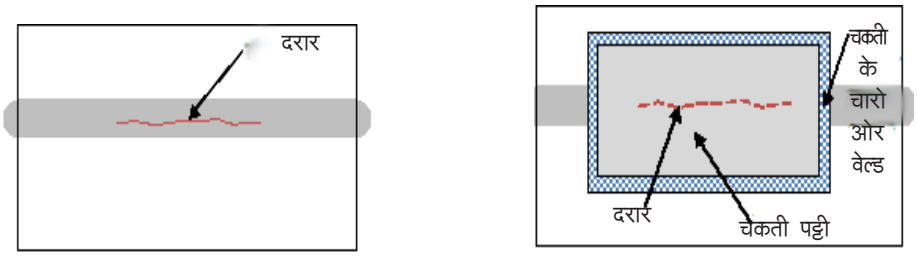

चित्र - 4 दरार की मरम्मत की चकती विधि

कार्यों को किया जाना आवश्यक हैः

1.सबसे पहले एक दूर-हस्तन प्रणाली द्वारा एक प्रकोष्ठः में घिरे हुए निरीक्षण व घिसाई मॉड्यूल को कुंड के अन्दर नीचे लाइनर की सतह पर उतारना ।

2.यह प्रकोष्ठ निरीक्षण कार्य से पहले कुंड के आंशिक स्थान को शेष कुंड से पृथक करना।

3. इस प्रकोष्ठ में एकत्रित पानी को पम्पिंग द्वारा बाहर निकालना.

4.पानी निकलने के बाद पृथक कक्ष को सुखाना.

5.लाइनर प्लेट पर कई संक्षारण/जंग उत्पाद या तो खड़ी या फ्लैट लाइनर प्लेटों पर संचित हो सकते हैं. किसी भी निरिक्षण कार्य को शुरू करने से पहले वेल्ड क्षेत्र के निकट स्थित इस प्रकार की सामग्री को लाइनर्स की सतह की सफाई द्वारा हटा दिया जाना.

6.साफ किए गए क्षेत्र से मलबे को हटाना.

7.पृथक किए गए कक्ष के भीतर गैर विनाशकारी तरीकों का उपयोग करते हुए वेल्ड के भीतर दरार के सटीक स्थान, आकार, गहराई और दिशा का आंकलन करना.

8.वेल्डिंग के लिए स्वच्छ सतह उत्पन्न करने के लिए पुराने वेल्ड सीवन की घिसाई करना.

9.इसके पश्चात दरार क्षेत्र में वेल्डिंग आपरेशन द्वारा नए वेल्ड सीवन स्थापना करना.

10.इसके पश्चात नए वेल्ड की मजबूती एवं रिसाव प्रतिरोध का परीक्षण करना.

11.एक बार नए वेल्ड की मजबूती एवं रिसाव प्रतिरोध का परीक्षण संतोषजनक सिद्ध होने के बाद कार्य समाप्त होना.

7.0 डिजाइन कसौटी : 1.भुक्तशेष भंडारण कुंड विकिरणित ईधन बंडलों से भरे होते हैं; इसलिए केवल दूर से संचालित या तो स्वायत्त या मास्टर-स्लेव रोबोटिक्स प्रणाली का प्रयोग लाइनर वेल्ड की मरम्मत के लिए किया जा सकता है.

2.रोबोट की मरम्मत इकाई लगभग 9-10 मीटर कुंड के नीचे) की गहराई पर क्षैतिज धरातल पर किसी भी स्थान के साथ ही कुंड की सभी ऊर्ध्वाधर सतहों पर सतह से लेकर 10 मीटर गहराई तक पहुंचने में सक्षम होना चाहिए.

3.रोबोट मरम्मत प्रणाली या तो अलग - अलग मॉड्यूल आधारित या एक साथ कई मॉड्यूल से मिलकर बनी एक रोबोटिक प्रणाली हो सकता है.

4.ऐसे रोबोटिक प्रणाली का आकार कम से कम होना चाहिए.

5.पानी के अन्दर गतिमान अवस्था में जलस्थैतिक (हाइड्रोस्टैटिक) दबाव और लोड को झेलने के लिए पर्याप्त मजबूत होना चाहिए.

6.पुराने वेल्ड को घिसने और ताजा वेल्ड के लिए किनारों तैयार करने में सक्षम होना चाहिए.

7.स्कैनिंग और आगे की कार्रवाई से पहले कुंड से गंदगी या मलबे को हटाने में सक्षम होना चाहिए.

8.रेडियोधर्मी मलबे को कुंड के शेष पानी में मिश्रित होने से बचाने के लिए सभी गंदगी फिल्टर के माध्यम से हो कर गुजारना चाहिए.

8.0 डिजाइन की संकल्पना : उपरोक्त कसौटियों को ध्यान में रखते हुए एक प्रकोष्ठ में घिरे हुए एक निरीक्षण व घिसाई मॉड्यूल वाली इकाई की संकल्पना की गई है.

प्रकोष्ठ के बिना निरीक्षण व घिसाई मॉड्यूल की असेंबली :- निरीक्षण व घिसाई मॉड्यूल एक घूर्णी फ्रेम के ऊपर विकर्ण की विपरीत दिशाओं में लगी है. यह फ्रेम एक दाबित पानी या सम्पीडित हवा से चलने घूर्णी चालक (रोटरी एक्च्युएटर) से जुडी है जो इन मॉड़्यूलों को अपनी घूर्णन अक्ष की धुरी पर घुमाती है. यह घूर्णी चालक एक तख्त से जुडा है जो एक ओर दो सम्पीडन कुंडलियों (कॉम्प्रेशन स्प्रिंग) के ऊपर अवलम्बित है और दूसरी ओर एक दूसरे तख्त पर लगे हुए दाबित पानी से चलने वाले दो रेखीय चालकों से जुडा है, जो

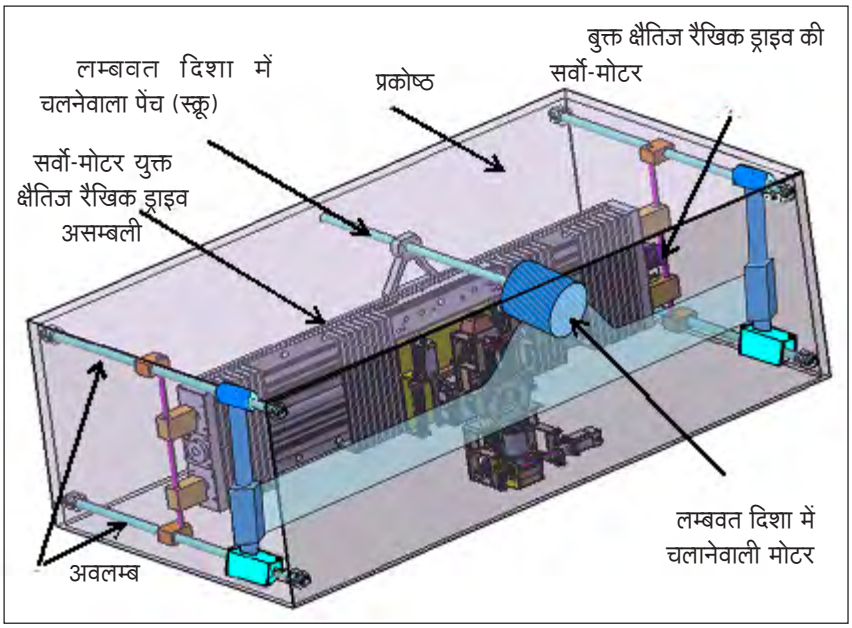

दूर नियंत्रित निरीक्षण मॉड्यूल इकाई का रेखाचित्र

इसे एक स्थिति में बनाए रखते हैं. इन रेखीय चालको में दाबित पानी का प्रवाह होने पर वे सम्पीडन कुंडलियों को दबाते हैं और घूर्णी चालक सहित निरीक्षण व घिसाई मॉड्यूल फ्रेम को लाइनर की सतह की ओर दबाते हैं जिससे निरीक्षण व घिसाई मॉड्यूल लाइनर सतह के समीप पहुँचते हैं.

निरीक्षण मॉड्यूल में एक निरीक्षण सेंसर (अल्ट्रासोनिक या प्रत्यावर्ती धारा क्षेत्र तकनीक सेंसर) एक सवी-मोटर से जुडे एक पेंच प्रणाली से जुडा होता है. यह सेंसर व पेंच प्रणाली दोनों ओर सम्पीडन कुंडलियों पर अवलम्बित होती हैं. सेंसर के ऊपर दो सम्पीडित हवा चालित रेखीय चालक जुडे होते हैं, जो दबाव बढाने पर कुंडलियों को सम्पीडित करते हैं और सेंसर तथा सर्वो - मोटर असेम्बली को लाइनर सतह की ओर ढकेलते हैं. यह सर्वो-मोटर सेंसर को क्षैतिज दिशा में खिसकाती है जिससे वेल्ड का निरीक्षण किया जा सके. रेखीय चालकों में से हवा का प्रवाह समाप्त करने से से कुंडलियां असम्पीडित हो जाती हैं और सवी - मोटर व सेंसर वापस अपनी पुरानी स्थिति में आ जाते हैं.

इसी प्रकार घिसाई मॉड्यूल में एक घिसाई यंत्र एक सवी-मोटर से जुड़े एक पेंच प्रणाली से जुडा होता है. यह सेंसर व पेंच प्रणाली दोनों ओर सम्पीडन कुंडलियों पर अवलम्बित होती हैं. सेंसर के ऊपर दो सम्पीडित हवा चालित रेखीय चालक जुड़े होते हैं, जो दबाव बढाने पर कुंडलियों को सम्पीडित करते हैं और घिसाई यंत्र तथा सर्वो - मोटर असेम्बली को लाइनर सतह की ओर ढकेलते हैं, यह सर्वो - मोटर घिसाई यंत्र को क्षैतिज दिशा में खिसकाती है जिससे वेल्ड की घिसाई की जा सके. रेखीय चालकों में से हवा का प्रवाह समाप्त करने से कुंडलियां असम्पीडित हो जाती हैं और सर्वो - मोटर व घिसाई यंत्र वापस अपनी पुरानी स्थिति में आ जाते हैं. ऐसा करने से रेखीय चालकों में सम्पीडित हवा का दबाव समाप्त होने की स्थिति में घिसाई यंत्र एक सुरक्षित अवस्था में आ जाता है और घिसाई य्ंत्र को शक्ति मिलने के बावजूद अवांछित घिसाई नहीं होती है.

निष्कर्ष : भुक्तशेष ईंधन भंडारण कुंड के निर्माण, प्रयोजन, लाइनर वेल्ड की बनावट, कुंड के अन्दर उपस्थित चुनौतियों एवं कम से कम मानवीय श्रम की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए उसके लाइनर वेल्ड में उपस्थित दरारों की खोज करने व उसकी मरम्मत करने के लिए एक प्रकोष्ठ में रखे हुए निरीक्षण व घिसाई मॉड्यूल की संकल्पना की गई है. इस संकल्पना को निर्मित करके उसका परीक्षण करके सिद्ध करने के बाद ही भुक्तशेष ईंधन भंडारण कुंड के लाइनर वेल्ड की दरारों की खोज एवं उसकी मरम्मत की जा सकेगी. इस इकाई का उपयोग करके कम से कम मानवीय श्रम और विकिरण खुराक में अपेक्षित कार्य को पूरा किया जा सकता है.

लेखक संपर्क :
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, ट्राम्बे मुंबई

होमीभाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता-2014 में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त लेख

हरित गृह प्रभाव से जलवायु परिवर्तन

-डॉ.अखिलेश्वर कुमार द्विवेदी

यूरोपीय देशों में भी इन सब्जियों के उत्पादन की चाहत बढ़ी है और इसके लिए हरित गृह की बुनियाद रखी गयी. हरित गृह एक विशेष कांच का घर होता है जिसमें विभिन्न प्रकार की उष्ण एवं समशीतोष्ण जलवायु में उत्पन्न होने वाली वनस्पतियों का बीजारोपण किया जा सकता है और पौधे लगाये जाते हैं. जिसमें सूर्य का प्रकाश लघु तरंग विकिरण के माध्यम से प्रवेश करता है और कुछ ऊष्मा दीर्घ तरंग के रूप में उस कांच गृह (हरित गृह) के उत्सर्जित हो जाती है तथा शेष ऊष्मा उसमें बनी रहती है. जो कि सब्जियों के उत्पादन में सहायक होती है. ठीक इसी प्रकार की स्थिति हमारी पृथ्वी की भी है. सूर्य के बाह्य भाग का तापमान अनुमानतः 6000 डिग्री है. सूर्य की बाह्य सतह से जितनी ऊर्जा विकसित होती है उसका 1/2 अरबवां भाग ही पृथ्वी की ओर अग्रसर होता है. यह स्वल्प मात्रा भी 23 ट्रिलियन (23,000,000,000,000) अश्व शक्ति के बराबर होती है. सौर्यिक विकिरण तरंगें 3000,000 किमी. प्रति सेकंड या 186,000 मील प्रति सेकंड की दर से सीधी रेखा में लघु तरंग के रूप में पृथ्वी के धरातल पर 150 मिलियन किमी. की औसत दूरी 8 मिनट 20 सेकंड में तय करके पहुंचती हैं. यदि पृथ्वी को प्राप्त होने वाली 23 ट्रिलियन अश्व शक्ति की मात्रा को 100 प्रतिशत माना जाए तो पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करने वाले सौर्यिक विकिरण का 35 प्रतिशत भाग विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा शून्य में वापस चला जाता है. 14 प्रतिशत भाग का वायुमण्डल की विभिन्न गैसों तथा जलवाष्प द्वारा अवशोषण कर लिया जाता है तथा शेष 51 प्रतिशत भाग ही पृथ्वी की सतह को प्राप्त होता है.

सूर्य से ऊर्जा प्राप्त करने के बाद पृथ्वी भी अपनी बाह्य सतह से दीर्घ तरंगों के माध्यम से ऊर्जा का वायुमण्डल में विकिरण करती है. पृथ्वी को प्राप्त 51 प्रतिशत ऊर्जा में से 23 प्रतिशत ऊर्जा का धरातल से दीर्घ तरंग के रूप में विकिरित होता है (जिसमें से 6 प्रतिशत वायुमण्डल को गर्म करता है तथा 17 प्रतिशत सीधे शून्य में वापस चला जाता है). धरातल से 9 प्रतिशत ऊर्जा संवहन तथा विक्षोभ में खर्च हो जाती है. इस तरह धरातल से 51 प्रतिशत ऊष्मा, जो सूर्यातप द्वारा लघु तरंग के माध्यम से प्राप्त होती है. दीर्घ तरंग के रूप में वापस हो जाती है जिससे धरातल पर ऊष्मा का संतुलन बना रहता है. यदि वायुमण्डल की बात करें तो वायुमण्डल को 48 प्रतिशत ऊष्मा की प्राप्ति होती है (14 प्रतिशत सूर्य से लघु तरंग विकिरण + 6 प्रतिशत धरातल से दीर्घ तरंग विकिरण + 9 प्रतिशत संवहन तथा विक्षोभ + 19 प्रतिशत वाष्पीकरण की गुप्त ऊष्मा से) अर्थात वायुमंडल को 14 प्रतिशत ऊष्मा सूर्य से व 34 प्रतिशत ऊष्मा पृथ्वी से प्राप्त होती है.

वायुमण्डल को प्राप्त इस 48 प्रतिशत ऊष्मा के एक बड़े भाग का पृथ्वी की ओर पुनः विकिरित हो जाता है. इस प्रक्रिया को प्रतिलोम विकिरण कहते हैं. प्रतिलोम विकिरण मुख्य रूप से जलवाष्प तथा वायुमण्डलीय कार्बण डाइऑक्साइड द्वारा संपन्न होता है और इस प्रक्रिया द्वारा वायुमण्डल का निचला भाग तथा धरातल अपेक्षाकृत गरम बना रहता है जो कि हरित कांच गृह की प्रक्रिया से मिलता-जुलता है. जिस प्रकार कांच गृह प्रवेशी लघु तरंग सौर्यिक विकिरण तरंगों को तो आने देता है, परन्तु बहिर्गामी दीर्घ तरंग विकिरण को बाहर जाने से रोकता है, ठीक उसी प्रकार जलवाष्प तथा कार्बन डाईऑक्साइड जैसी ग्रीन हाउस गैस पृथ्वी के धरातल से होने वाले दीर्घ तरंग विकिरण (ऊष्मा) को वायुमण्डल से शून्य में जाने से रोकती हैं. इसके फलस्वरूप पृथ्वी गर्म रहती है. यदि ग्रीन हाउस गैसों द्वारा धरातल से निर्गत ऊष्मा का अवशोषण न किया जाए तो पृथ्वी का तापमान गिरकर लगभग 20^0C हो जाएगा जो कि पृथ्वी के किसी भी जीव के जीवन के अनुकूल नहीं होगा. अतः पृथ्वी पर जीवन के लिए इन प्राकृतिक ग्रीन हाउस गैसों का होना भी आवश्यक है. किन्तु वर्तमान में ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा में वृद्धि हो रही है. जलावाष्प तथा कार्बन डाइऑक्साइड,

नाइट्रस ऑक्साइड आदि ग्रीन हाउस गैसों की श्रृंखला में शामिल हो रही हैं और इनकी मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है. फलस्वरूप वायुमण्डल विषैला हो रहा है. परिणामस्वरूप वायुमण्डल द्वारा दीर्घ तरंगों को और अधिक मात्रा में रोका जा रहा है, जिसके कारण पृथ्वी के तापमान में वृद्धि हो रही है.

पिछले 200 वर्षों (1790-1990) के दौरान गृह गैसों के उत्सर्जन में वृद्धि का विवरण निम्न सारणी से स्पष्ट है. विभिन्न वर्षों में अनुमानित विश्व जनसंख्या का विवरण **निम्नलिखित से स्पष्ट है.:-**

अनुमानित विश्व जनसंख्या

वर्ष	1920	1930	1940	1950	1960	1970	1980	1990	2000
विश्व जनसंख्या	1811	2070	2295	2513	3027	3678	4415	5275	6199

(स्त्रोत : यू.एन.डी.ई. जनसंख्या विभाग,1953 और विश्व जनसंख्या प्रवृत्ति और परिदृश्य, 1950-2000)

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि हरित गृह गैसों में लगातार वृद्धि होती जा रही है. इन गैसों की उत्तरोत्तर वृद्धि के लिए निम्न कारक उत्तरदायी हैं.

वन विनाश :- वन भूतल के लिए प्राकृतिक छतरी का कार्य करते हैं, क्योंकि ये मानव द्वारा उत्सर्जित कार्बन डाइऑक्साइड को सोख कर वायुमण्डल के हरित गृह प्रभाव को कम करते हैं, धरातल एवं वायुमण्डल के विकिरण तथा ऊष्मा संतुलन को कायम रखते हैं, किन्तु वर्तमान में अति चारण, वनाग्नि, वन भूमि के कृषि भूमि व चारागाह भूमि में परिवर्तन से वनों का विनाश हो रहा है, जिसके फलस्वरूप मानव क्षरार उत्सर्जित कार्बन डाइऑक्साइड की अतिरिक्त मात्रा का अवशोषण नहीं हो पा रहा है जिससे हरित गृह प्रभाव में वृद्धि होने से धरातल एवं निचले वायुमण्डल के तापमान में वृद्धि होने से धरातल एवं निचले वायुमण्डल के तापमान में वृद्धि हो रही है, फलस्वरूप वैश्विक तापन में वृद्धि हो रही है.

जनसंख्या वृद्धि :- दिन-प्रतिदिन बढ़ती जनसंख्या के कारण मानव के अधिवास क्षेत्रों में भी वृद्धि हो रही है. आबादी बढ़ने से जहां रिहायशी क्षेत्र में विस्तार हो रहा है, वहीं कृषि क्षेत्र व वन क्षेत्र संकुचित होते जा रहे हैं. जनसंख्या बढ़ने से उनके पोषण हेतु रोटी, कपड़ा और मकान की पूर्ति के लिए प्राकृतिक संसाधनों का असंतुलित विदोहन हो रहा है.

सारणी से स्पष्ट है कि प्रति दशक जनसंख्या में वृद्धि होती रही है और स्वभाविक है कि इस जनसंख्या दबाव से वायुमण्डल भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रदूषित होता रहेगा जो कि हरित गृह प्रभाव में न्यूनाधिक उत्प्रेरक की भूमिका निभाएगा.

औद्योगिक विकास :- कारखानों की चिमनियों से निकलने वाली विभिन्न गैसों तथा जीवश्म ईंधनों को जलाने से कार्बन डाइऑक्साइड गैसों का उत्सर्जन हो रहा है तथा वायुमण्डल में इसका सांद्रण हो रहा है. औद्योगिक क्रान्ति के प्रारम्भ में वायुमण्डल के कार्बन डाइऑक्साइड का सान्द्रण 0.027 प्रतिशत (275 पीपीएम) था जो 1990 में लगभग 0.035 प्रतिशत (350 पीपीएम) हो गया. वायुमण्डल में कार्बन डाइऑक्साइड की अधिक मात्रा होने से हरित गृह प्रभाव में वृद्धि हो रही है. कार्बन डाइऑक्साइड के अतिरिक्त कार्बन मोनोऑक्साइड, फलोरोकार्बन, नाइट्रोजन मोनोआक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड, नाइट्रस ऑक्साइड, जेट वायुयान द्वारा उत्सर्जित एरोसोल आदि भी हरित गृह प्रभाव में अपना योगदान दे रहे हैं.

नगरीकरण :- रोजगार, शिक्षा, व्यवसाय, उच्च जीवन स्तर के आकर्षण ने नगरीय क्षेत्र की जनसंख्या को बड़ी तेजी से बढ़ाया है. इसके साथ ही द्रुतगामी परिवहन सुविधाओं ने भी इसमें अपार सहयोग दिया है. वर्तमान में बड़े-बड़े महानगरों में जनसंख्या का घनत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है. नगरीय क्षेत्रों के आस-पास के ग्रामीण क्षेत्र भी नगरीकरण की ओर उन्मुख हो रहे है. फलस्वरूप नगरीय केन्द्र तथ उसके निकटस्थ बाहरी भागों में औद्योगिक विकास भी तीव्र गति से होने लगता है. साथ ही परिवहन सुविधाएं भी जनसंख्या की तरह तेजी से बढ़ने लगती हैं. कारखानों की चिमनियों तथा वाहनों से भरी मात्रा में विषैली गैसें, धुआं तथा एरोसोल का नगरों के ऊपर संघनन होने लगता है. इस कारण बड़े पैमाने पर वायु प्रदूषण होता है जिसमें प्रमुख रूप से नाइट्रोजन के ऑक्साइड, कार्बन मोनोआक्साइड, हाइड्रोकार्बन, सल्फर डाइऑक्साइड, कार्बन डाइऑक्साइड, क्लोरोफ्लोरोकार्बन इत्यादि गैसें हैं. इसके अतिरिक्त नगरीय क्षेत्रों में प्राकृति वनस्पति की कमी तथा भवनों की पक्की छतों, पक्के फर्श, पक्की सड़कों तथा गलियों के कारण

सौर्य विकिरण का अधिकतम अवशोषण होता है तथा ऊष्मा का परावर्तन अन्य स्थानों की अपेक्षा कम होता है, जिस कारण नगर में आस-पास के ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में तापमान अधिक हो जाता है, जो कि हरित गृह प्रभाव की वृद्धि में सहायक होता है.

हरित गृह प्रभाव का परिणाम :- हरित गृह गैसों की वृद्धि के परिणामस्वरूप पृथ्वी के तापमान में वृद्धि होना प्रारंभ हो गया है. पृथ्वी के तापमान में इतनी वृद्धि हो चुकी है कि यदि उपरोक्त कारकों के कारण हरित गृह गैसों में इसी दर से वृद्धि होती रही तो 21वीं सदी के अन्त तक तापमान में 1.5 से 5.4^{0}C तक वृद्धि हो सकती है. वर्तमान में पृथ्वी का औसत तापमान 15^{0}C है और आनेवाले कुछ वर्षों में विश्व का तापमान लगभग आधा डिग्री सेल्सियस बढ़ने की संभावना है. बढ़ते हुए तापमान की वजह से विश्व के लगभग सभी हिमग्लेशियरों का पिघलाव प्रारंभ हो चुका है. इस बढ़ते हुए तापमान को ग्लोबल वार्मिंग की संज्ञा दी गयी है.

हिमग्लेशियरों के तेजी से पिघलने के कारण नदियों में प्रवाहित जल की मात्रा में वृद्धि होगी. पार्श्वीय अपरदन से भूस्खलन में वृद्धि होगी जिसके फलस्वरूप नदी के तल में मलवे के जमाव व नदियों में क्षमता से अधिक जल आने की वजह से बाढ़ की समस्याएं उत्पन्न होंगी. कुछ समय बाद हिमग्लेशियरों के समाप्त होने पर जल का संकट होगा और सूखे की आपदा से दो-चार होना पड़ेगा. आर्कटिक क्षेत्र का ध्रुवीय हिमशिखर प्रति दशक 9 प्रतिशत की दर से पिघलता जा रहा है. वैज्ञानिकों के अनुसार वर्ष 2040 तक आर्कटिक क्षेत्र में बर्फ बिल्कुल समाप्त हो जाएगा. भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण के एक अध्ययन के अनुसार भारत का सबसे प्रमुख गंगोत्री ग्लेशियर, जो 1970 के दशक में 20 मीटर प्रति वर्ष की दर से पीछे हट रहा था, वर्तमान में 6 मीटर प्रति वर्ष की दर से पीछे हट रहा है. यदि गंगोत्री 20 मीटर प्रति वर्ष की दर से पीछे हट रहा था. वर्तमान में 6 मीटर प्रति वर्ष की दर से भी पीछे हटे तो इसे समाप्त होने में लगभग 15000 वर्ष का समय लग जाएगा, जो कि चिन्ता का विषय नहीं है किन्तु संयुक्त राष्ट्र संघ की मौसम समिति की रिपोर्ट से हमारी चिंता बढ़ जाती है. इस रिपोर्ट के अनुसार वैश्विक तापन के कारण हिमालय क्षेत्र में सभी ग्लेशियरों (भारत के 9575 ग्लेशियर) का लगभग 80 प्रतिशत भाग वर्ष 2030 ई. तक समाप्त हो जाएगा. यदि संयुक्त राष्ट्र संघ की मौसम समिति की रिपोर्ट का आधार बनाया जाये तो हिमालय के ग्लेशियरों द्वारा पोषित एशिया की 10 बड़ी नदियां प्रभावित होंगी तथा इन नदियों के घाटी क्षेत्रों में निवासित 1.5 खरब लोग, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हिमालय पर निर्भर हैं, के प्रभावित होने की संभावना होगी.

ग्लेशियरों के पिघलने की प्रवृत्ति यदि इसी प्रकार रही तो यह न केवल हिम रेखा की ऊंचाई बढ़ाएगी बल्कि ग्लेशियरों के पिघलने से बहते हुए पानी को भी बढ़ाएगी, फलस्वरूप समुद्र की ऊंचाई बढ़ेगी. एक अनुमान के अनुसार तटीय क्षेत्र के 50 किमी. क्षेत्र के 40 प्रतिशत लोग प्रभावित होंगे. तटीय क्षेत्र व छोटे-छोटे द्वीप जलमग्न हो जाएंगे. स्थलीय क्षेत्र का आकार छोटा होता जाएगा जिसके कारण प्रति वर्ग किमी. में जनसंख्या घनत्व बढ़ता जाएगा. हरित गृह गैसों की वृद्धि के चलते महत्वपूर्ण ओजोन परत का क्षरण भी प्रारंभ हो गया है. इसके क्षरण में महत्वपूर्ण भूमिका मानव निर्मित रसायनों क्लोरो-फ्लोरो कार्बन (CFC), मीथेन नाइट्रेस ऑक्साइड की है. ओजोन की अल्पता के विषय में चेतावनी देने का संभवतः पहला प्रयास कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के 'एम.मोलिक' तथा 'एस.रोलेण्ड' द्वारा 1974-75 में किया गया था. ओजोन परत का सर्वाधिक सान्द्रण समतापमण्डल में सागर तल से 12 से 35 किमी. की ऊंचाई के मध्य पाया जाता है, क्योंकि ओजोन परत सौर्य विकिरण की पराबैंगनी किरणों को अवशोषित कर उन्हें पृथ्वी तल तक पहुंचने से रोकती है, जिससे पृथ्वी का तल अत्यधिक गर्म होने से बच जाता है. ओजोन परत के क्षय होने से पृथ्वी के तापमान में तेजी से वृद्धि होगी. एक अनुमान के अनुसार आने वाले लगभग 40 वर्षों में धरातल तक पहुंचने वाले पराबैंगनी विकिरण में 5 से 20 प्रतिशत तक वृद्धि होने की संभावना रहेगी, जिससे भूमण्डलीय तापन में वृद्धि हो जाएगी, फलस्वरूप जलवआयु में प्रादेशिक व विश्व स्तर पर परिवर्तन होने की प्रबल सम्भावना है.

तापमान में वृद्धि से हिमनदों व ग्रीनलैण्ड तथा एन्टार्कटिक की वृहद् हिमचादरों का पिघलाव हो जाएगा जिसके अतिरिक्त पराबैंगनी विकिरण के कारण गोरी चमड़ी वाले लोगों में त्वचा कैंसर का रोग बढ़ेगा तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता में कमी आएगी. भूमध्यरेखीय प्रदेशों के लोगों का शारीरिक एवं मानसिक विकास अवरूद्ध हो जाएगा. अत्यधिक पराबैंगनी विकिरण के कारण तापमान में वृद्धि होने से खाद्य संकट उत्पन्न होगा क्योंकि अधिकांश फसलें, वनस्पतियां तथा जीव-जंतु समाप्त हो जाएगे. पराबैंगनी विकिरण में वृद्धि के फलस्वरूप होनेवाली तापमान वृद्धि के कारण मिट्टी की नमी में कमी होगी, फलस्वरूप कृषि उत्पादन में कमी होगी. फसलें सूखेंगी या झुलस जाएंगी. सागरीय पारिस्थितिक तंत्र में फाइटोप्लैक्टन की उत्पादकता में भारी कमी होने से मछलियां भुखमरी का शिकार होंगी और मछलियों की संख्या में कमी

आएगी, जिससे सागर तटीय क्षेत्र के निवासी भी प्रभावित होंगे. कल-कारखानों, वाहन एवं तेल शोधकों से निकली सल्फर डाइऑक्साइड गैस हवा में घुलकर रासायनिक अभिक्रिया के फलस्वरूप सल्फ्यूरिक अम्ल में परिवर्तित हो जाती है. यह तत्व पानी की बूंदों में घुल कर वर्षा जल के साथ धरातल पर आता है, जिसे अम्लीय वर्षा कहते हैं. सामान्यतः वर्षा के जल का पीएच मान 5 होता है, लेकिन जब उसमें सल्फर डाइऑक्साइड गैस मिल जाती है, तो सल्फ्यूरिक एसिड बन जाता है जो जल के पीएच मान को कम कर देता है. जिससे जल की अम्लीयता बढ़ जाती है. अम्लीय वर्षा के कारण जैव एवं अजैव तत्व का क्षरण होता है कि पारिस्थितिक तंत्र को प्रभावित करता है.

जलवायु परिवर्तन के प्रति अन्तर्राष्ट्रीय पहल :- अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय हरित गृह प्रभाव तथा उससे होने वाले वैश्विक तापन, जलवायु परिवर्तन तथा उससे होने वाले प्रभावों के प्रति जागरूक है, जिस पर नियंत्रण हेतु कई प्रयास प्रारंभ कर दिए गए हैं. वैश्विक पर्यावरण की गुणवत्ता के संरक्षण, पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता एवं जैवविविधता का अस्तित्व बचाए रखने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न राष्ट्रों एवं संगठनों द्वारा संगोष्ठियों का आयोजन किया जाता रहा है. जिसका विवरण निम्नवत है :-

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न राष्ट्रों एवं संगठनों द्वारा संगोष्ठियों का आयोजन :-

1- 1961, विश्व वन्य जीव कोष की स्थापना वन्य जीवों के संरक्षण को ध्यान में रखकर की गयी.

2- 1964, अंतराष्ट्रीय जैव कार्यक्रम की स्थापना वैज्ञानिक संघ की अन्तर्राष्ट्रीय परिषद द्वारा की गयी जिसका मुख्य उद्देश्य 'उत्पादकता के जीवीय आधार तथा मानव कल्याण' से सम्बन्धित शोध करना है.

3- 1969, आधुनिक समाज की चुनौतियों से सम्बन्धित समिति की स्थापना नाटो (NATO) राष्ट्रों द्वारा मानव पर्यावरण संबंधी समस्याओं के अध्ययन के उद्देश्य की गई. यह समिति निम्नांकित विषयों पर निगरानी रखती है :-

1- हानिकारक अपशिष्टों का निस्तारण,
2- तटवर्ती जल प्रदूषण,
3- अन्तः स्थलीय जल,
4- वायु प्रदूषण,
5- प्रदूषित जल के शोध की आधुनिक तकनीक.

4- 1970, यूनेस्को के मनुष्य एवं जीवमण्डल कार्यक्रम की स्थापना यूनेस्को द्वारा की गयी. इसका मुख्य उद्देश्य मनुष्य के क्रियाकलापों तथा प्राकृतिक पर्यावरण के मध्य होने वाले अन्तक्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न समस्याओं का प्रबन्धन करना है.

5- 1972, संयुक्त राष्ट्र के पर्यावरण की स्थापना (स्वीडन) में मनुष्य-पर्यावरण सम्मेलन के दौरान हुई. इसमें 119 देशों ने भाग लिया. इसे स्टॉकहोम घोषणा पत्र 1972 के नाम से जाना जाता है. यह पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित गतिविधियों का एक ऐतिहासिक दस्तावेज है, जिसे पर्यावरण का 'मैग्नाकार्टा' कहा गया. 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस मनाने का विचार इसी सम्मेलन में लिया गया था. इस सम्मेलन के पश्चात ही विश्वस्तर पर पर्यावरण अवबोध का वास्तविक प्रारम्भ हुआ.

6- 1977, संयुक्त राष्ट्र मरूस्थलीकरण सम्मेलन का आयोजन नैरोबी (केन्या) में हुआ. इसमें 100 देशों तथा 80 अर्न्तसरकारी एवं गैर-सरकारी संगठनों के 1500 व्यक्तियों ने भाग लिया. इसमें मरूस्थलीकरण तथा 1967-73 के भयंकर सूखे के बारे में चर्चा करके भावी रणनीति तैयार की गई.

7- 1978 हैबिटल नामक संस्था की स्थापना नैरोबी (केन्या) में की गयी. इसका मुख्य उद्देश्य पृथ्वी पर मानवीय आवास एवं जीवन स्तर को गुणात्मक बनाना था.

8- 1979, जिनेवा (स्विट्रलैण्ड) में प्रथम 'जलवायु सम्मेलन' का आयोजन किया गया.

9- 1980, वियना (आस्ट्रिया) में औद्योगिक कारणों से घटित जलवायु विषय पर संगोष्ठी का आयोजन विश्व मौसम विज्ञान संगठन द्वारा किया गया.

10- 1982, नैरोबी (केन्या) में स्टॉकहोम घोषणा पत्र के दस वर्ष पूर्ण होने पर नैरोबी घोषणा पत्र द्वारा पर्यावरण संकट पर पुनः अपने दायित्वों को दोहराया गया.

11- 1985, वियना (आस्ट्रिया) में ओजोन परत के संरक्षण पर सम्मेलन आयोजित किया गया.

12- 1986, अन्तर्राष्ट्रीय भूमण्डल जीव-मण्डल कार्यक्रम की स्थापना वैज्ञानिक संघ की अन्तर्राष्ट्रीय परिषद द्वारा की गयी. इसका उद्देश्य पृथ्वी तंत्र को संतुलित करने में भौतिक, रासायनिक एवं जैव प्रक्रियाओं की अन्तःक्रिया को समझना तथा वर्णित करना था.

13- 1987, मॉण्ट्रियल (कनाडा) में ओजोन परत का विखण्डन करनेवाले प्रमुख तत्व क्लोरो-फ्लोरो-कार्बन के उत्पादन एवं उपभोग में कटौती करना इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य था जिसे मॉण्ट्रियल प्रोटोकॉल कहते हैं.

14- 198, टोरोण्टो (कनाडा) में 2005 तक कार्बन डाइऑक्साइड के उत्सर्जन में 20 प्रतिशत की कटौती करने का निर्णय लिया गया किन्तु विकसित राष्ट्रों ने असहमति प्रकट की.

15- 1988, संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम तथा 'विश्व

मौसम विज्ञान संगठन' द्वारा जलवायु परिवर्तन के अध्ययन एवं विवरण प्रस्तुत करने के लिए जलवायु परिवर्तन अंतरशासकीय पैनल (IPCC) का गठन किया गया. इस पैनल का प्रमुख कार्य पृथ्वी पर हरित गृह गैसों के प्रभाव पर समय-समय पर रिपोर्ट प्रस्तुत करना सुनिश्चित किया गया.

16- 1990, 'द्वितीय विश्व जलवायु सम्मेलन' का आयोजन किया गया. इसका उद्देश्य ग्रीन हाउस गैसों की रोकथाम हेतु कारगर उपाय की तलाश एवं अंतरशासकीय संधिवार्ता का गठन करना था.

17- 1992, रियो दि जेनेरियो (ब्राजील) में 3 से 14 जून तक संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण व विकास सम्मेलन का आयोजन किया गया. इसमें 154 देश सम्मिलित हुए. इसे 'पृथ्वी सम्मेलन' अथवा 'रियो सम्मेलन' भी कहा जाता है. इसमें जलवायु परिवर्तन कन्वेन्शन पर हस्ताक्षर किया गया. रियो सम्मेलन में 21वीं सदी में पृथ्वी को पुनः हरा-भरा बनाने का प्रसिद्ध दस्तावेज एजेण्डा-21 के नाम से स्वीकृत हुआ जो कि 800 पृष्ठों का है. यह एजेण्डा 4 खण्डों मे विभक्त है.

18- 1994, इस सम्मेलन में रियो सम्मेलन के समय हस्ताक्षरित जलवायु परिवर्तन कन्वेंशन को कार्य रूप दिया गया जिसके अन्तर्गत 200ई. तक कार्बन डाइऑक्साइड के उत्सर्जन को 1990 के स्तर पर लाना निर्धारित किया गया.

19- 1995, COP-1 बर्लिन (जर्मनी) में जलवायु परिर्वन कन्वेंशन के पक्षधरों के प्रथम सम्मेलन का आयोजन हुआ किन्तु कार्बन डाइऑक्साइड के उत्सर्जन की मात्रा निर्धारित करने पर आम सहमति नहीं बन पायी.

20- 1996, COP-2 जिनेवा (स्विट्रलैण्ड) में जलवायु परिवर्तन के पक्षधरों का द्वितीय सम्मेलन हुआ और यह कार्बन डाइऑक्साइड के उत्सर्जन के मुद्दे पर असफल रहा.

21- 1997, न्यूयार्क (संयुक्त राज्य अमेरिका) में 23-27 जून के दौरान द्वितीय सम्मेलन का आयोजन हुआ जिसमें 178 देशों के प्रतिनिधियों तथा 70 राष्ट्राध्यक्षों ने भाग लिया. इस सम्मेलन का प्रमुख उद्देश्य 1992 के प्रथम पृथ्वी सम्मेलन के एजेण्डा-21 के क्रियाकलापों का मूल्यांकन करना था. इसे प्लास सम्मेलन के नाम से भी जाना जाता है.

22- 1997, COP-3, क्योटो (जापान) में 1 से 10 दिसंबर तक जलवायु परिवर्तन के पक्षधरों का तृतीय सम्मेलन हुआ और इसमें 140 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया जिसका मुख्य उद्देश्य पृथ्वी पर हो रही ताप की वृद्धि को नियंत्रित करना था. इस हेतु 37 विकसित देशों द्वारा 1990 के स्तर के कार्बन डाइऑक्साइड के उत्सर्जन में 5.2 प्रतिशत की कटौती करने की आम सहमति बनी.

23- 1998, COP-4, ब्यूनस आयर्स (अर्जेण्टीना) में आयोजित किया गया जिसमें क्योटो प्रोटोकॉल को 2000 ई. से लागू करने पर सहमति हुई.

24- 1999, COP-5, बॉन (जर्मनी) में आयोजित हुआ.

25- 2000, COP-6, हेग (नदीरलैण्ड) में बिना किसी समझौते के निलम्बित हो गया. बिल क्लिंटन प्रशासन तथा यूरोपीय संघ के प्रतिनिधियों में आपसी मतभेद के कारण बिना किसी समझौते के यह सम्मेलन निलंबित हुआ.

26- 2001, COP-6, बॉन (जर्मनी) हेग में निलम्बित COP-6, का पर्यावरण सम्मेलन पुनः प्रारंभ हुआ. इस बार बुश प्रशासन द्वारा सहयोग न करने से बेनतीजा रहा.

27- 2001, COP-7, मराकेश (मोरक्को) में 9 नवंबर को आयोजित हुआ. इसके अंतर्गत जी-8 के औद्योगिक देशों ने 2008-10 तक पृथ्वी के तापमान को बढ़ाने वाली ग्रीन हाउस गैसों में 8 प्रतिशत की कमी लाने तथा उल्लंघन करने वाले राष्ट्र को दण्ड करने व दण्ड की राशि को 'स्वच्छ विकास कोष' में जमा करने पर सहमति प्रकट की.

28- 2002, COP-8, नई दिल्ली (भारत) में आयोजित हुआ.

29- 2002, जोहान्सबर्ग (दक्षिण अफ्रीका) में 26 सितंबर से 4 अगस्त को पृथ्वी सम्मेलन का आयोजन हुआ जिसमें 200 राष्ट्रों के 60000 प्रतिनिधि एवं 106 राष्ट्रों के राष्ट्राध्यक्षों ने सहभागिता की. इसमें सतत विकास पर जोर दिया गया.

30- 2003, COP-9, मिलान (इटली) में आयोजित हुआ.

31- 2004, COP-10, ब्यूनस आयर्स (अर्जेएटना) में आयोजित हुआ.

32- 2005, COP-11, मॉण्ट्रियल (कनाडा) में आयोजित हुआ, जिसमें विकसित देशों द्वारा 2012 तक अपने यहां ग्रीन हाउस गैसों में वर्ष 1990 के स्तर को पाने के लिए इसके उत्सर्जन में 25-40 प्रतिशत कटौती करने, पर्यावरण कोष बनाने तथा विकसित तकनीकी के हस्तांतरण पर सहमति बनी.

33- 2006, COP-12, नैरोबी (केन्या) में आयोजित हुआ.

34- 2007, COP-13, बाली (इण्डोनेशिया) के नूसा दुआ में 3-15 दिसंबर को आयोजित हुआ जिसमें तय किया गया कि ग्लोबल वार्मिंग के खिलाफ प्रभावी और दीर्घकालिक उपायों पर सहमति बनायी जाएगी. इसके अतिरिक्त वर्ष 2009 में होने वाले कोपेनहेगेन सम्मेलन के दौरान एक अंतर्राष्ट्रीय संधि के लिए रोड मैप तैयार करना था जो वर्तमान वर्ष (2012) में क्योटो प्रोटोकॉल का स्थान लेगा. इस सम्मेलन में विश्व के 193 देशों के 11 हजार से अधिक प्रतिनिधियों, पर्यावरणविदों, पत्रकारों तथा वैज्ञानिकों ने

सहभागिता की.

35- 2008, COP-14, पोनान (पोलैण्ड) में आयोजित हुआ.

36- 2009, COP-15, कोपेनहेगन (डेनमार्क) में 7-18 दिसंबर को आयोजित हुआ. इसमें 192 राष्ट्रों के 15 हजार प्रतिनिधि व 5000 पत्रकार सम्मिलित हुए. इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य 'बाली रोड मैप-2007' में तैयार की गई अग्रिम कार्य योजना के तहत 2012 में समाप्त होने वाले क्योटो समझौते का स्थान लेने के लिये किसी नये समझौते को अस्तित्व में लाना था किन्तु नए प्रस्ताव पर आम सहमति नहीं बन पायी.

37- 2010, COP-16, मैक्सिको में 29 नवंबर से 9 दिसंबर तक.

38- 2011, COP-17, डरबन, दक्षिण अफ्रीका में, 28 नवंबर से 9 दिसंबर.

39- 2012, COP-18, दोहो, 26 नवंबर से 7 दिसंबर में आयोजित हुआ.

40- 2013, COP-19, वर्सा, 11 से 23 नवंबर में आयोजित हुआ.

41- 2014, COP-20, लीमा, 1 से 12 दिसंबर में आयोजित हुआ.

42- 2015, COP-21, पेरिस, 30 नवंबर से 11 दिसंबर में प्रस्तावित.

उपरोक्त सम्मेलनों के अतिरिक्त अलग-अलग देशों में राष्ट्रीय, प्रादेशिक व क्षेत्रीय स्तर पर भी पर्यावरण को प्रदूषण मुक्त बनाने, स्वच्छ रखने आदि कार्यक्रमों के प्रति प्रत्येक वर्ष विभिन्न सम्मेलनों का आयोजन किया जा रहा है, जिसमें पानी की तरह पैसा बहाया जा रहा है. विभिन्न स्वयंसेवी संस्थाओं व एन.जी.ओ. को राष्ट्रीय व अंतराष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण जागरूकता के लिये वित्तीय सहायता प्रदान की जा रही है जिसमें करोड़ों के वारे-न्यारे हो रहे हैं किन्तु पर्यावरण है कि स्वच्छ होने का नाम ही नहीं ले रहा है. वर्तमान में पर्यावरण एक ऐसा मुद्दा है जिस पर अंतराष्ट्रीय संगठन जागरुकता व स्वच्छता के नाम पर दिल खोलकर आर्थिक सहायता प्रदान कर रहे हैं, आवश्यकता है कि सरकार व अंतर्राष्ट्रीय संगठन आर्थिक सहायता प्रदान करने में पारदर्शिता रखें तथा समय-समय पर उनके क्रियाकलापों का मूल्यांकन करते रहें. पर्यावरण को सुरक्षित रखने की जिम्मेदारी किसी राष्ट्र की सरकार, अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय या स्वयंसेवी संगठन व एन.जी.ओ.की ही नहीं वरन् विश्व समुदाय के प्रत्यक मानव की भी है कि वह स्वयं पहल कर अपने आस-पास के पर्यावरण को स्वच्छ रखें तभी यह क्षेत्रीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण को सुरक्षित रख पायेगा.

लेखक संपर्क : प्राध्यापक भूगोल, भूगोल विभाग
श्री अ.प्र.ब.राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अगस्त्यमुनि,
रूद्रप्रयाग (उत्तराखण्ड)

इस आलेख में COP क्या है? सीओपी (Conference of parties) सभी देशों के प्रमुखों के दल का संगठन जिसमें विश्व जलवायु परिवर्तन और पर्यावरण संबंधी आवश्यक नीतियों पर निर्णय लिए जाते हैं और उनको लागू करने हेतु विश्व के विभिन्न संस्थानों और प्रशासनिक संरचनाओं ली सहायता की जाती है.

होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता-2014 में तृतीय पुरस्कार प्राप्त लेख

'इबोला' - एक दुर्दान्त घातक व्याधि

- राम प्रताप तिवारी

विषाणु सार्वभौमिकरूप से व्याधि संक्रमणकारी माने जाते हैं. सदैव पोषी पर निर्भर होने के कारण उसे निरंतर दुर्बल बनाते रहते हैं. संप्रति कतिपय विषाणुओं पर प्रतिजीवक औषधियां भी निष्प्रभावी सिद्ध होती हैं और इससे व्याधि-प्रसार महामारी का स्वरूप शीघ्र ग्रहणकर लेता है. इबोला विषाणु वस्तुतः अन्य देशों से ही हमारे देश में आने की सूचनाएं प्राप्त हुई है. विषाणु की प्रकृति और प्रबंधन तथा नियंत्रण पर प्रस्तुत है यह लेख :-

इबोला विषाणु व्याधि (EBOV) एक भयंकर प्राणघाती व्याधि है जो शरीर के लगभग सभी अंगों को प्रभावित करती है परंतु अस्थिकंकाल तंत्र पर यह प्रभावी नहीं सिद्ध हुई है. इबोला विषाणु अत्यंत विरल होता है. शरीर में एक बार प्रविष्ट और स्थापित हो जाने पर यह कोलॉजेन का क्षरण प्रारंभ करता है और त्वचा के अंतःस्तरों को द्रवीभूत करने लगता है. विषाणु के अन्य अंगों में प्रसार के परिणामस्वरूप प्रतिरक्षा तंत्र को गंभीर हानि पहुंचने लगती है. रक्त प्रवाह में थक्के जमने के कारण रक्त सान्द्रण उत्पन्न हो जाता है. अंततोगत्त्वा आंतरिक एवं बाह्य रक्तस्त्राव प्रारंभ हो जाता है. अतिशय रक्ताल्पता के कारण मृत्यु की संभावना होती है.

इस घातक व्याधि का एक अन्य प्रचलित नाम ईबोला रक्तस्त्रावी ज्वर (EHF) भी है. इबोला संक्रमित मामलों में मृत्युदर 90 प्रतिशत तक प्रदर्शित हुई है. वस्तुतः अन्य संक्रमणकारी विषाणुओं (यथा-सामान्य प्रतिश्याय, फ्लू, खसरा, चेचक) की तुलना में इबोला विषाणु न्यून संक्रमण क्षमतायुक्त होता है तथापि यह त्वचा संपर्क, शरीर के उत्सर्जी द्रवों (आंसू, पसीना, वीर्य, कफ आदि) के द्वारा भी प्रसारित होता है. संक्रमित व्यक्तियों तथा अन्य संक्रमित मेरुदण्डधारी प्राणियों (मर्कट, चमगादड़, पशु) के शारीरिक संपर्क से भी इसके संक्रमण की संभावना होती है.

इस घातक व्याधि का एक अन्य प्रचलित नाम एबोला रक्तस्रावी ज्वर (EHF) भी है. इबोला संक्रमित मामलों में मृत्युदर 90 प्रतिशत तक प्रदर्शित हुई है. वस्तुतः अन्य संक्रमणकारी विषाणुओं (यथा-सामान्य प्रतिश्याय, फ्लू, खसरा, चेचक) की तुलना में इबोला विषाणु न्यून संक्रमण क्षमता युक्त होता है तथापि यह त्वचासंपर्क, शरीर के उत्सर्जी द्रवों (आंसू, पसीना, वीर्य, कफ आदि) के द्वारा भी प्रसारित होता है. संक्रमित व्यक्तियों तथा अन्य संक्रमित मेरुदण्डधारी प्राणियों (मर्कट, चमगादड़, पशु) के शारीरिक संपर्क से भी इसके संक्रमण की संभावना होती है. संक्रमित व्यक्ति की सेवा-सुश्रूषा में लगे व्यक्तियों अथवा इस व्याधिग्रस्त (मृत) व्यक्ति के स्पर्श आदि से भी प्रायः संक्रमण प्रदर्शित हुआ है. इबोला व्याधि के प्रभाव से स्वास्थ्य लाभ प्राप्त पुरुषों के द्वारा महिलाओं में वीर्य के माध्यम से भी प्रायः 2 मास तक संक्रमण की प्रबल संभावना रहती है.

संक्रमण प्रसार के अन्य माध्यम संक्रमित टीकाकरण सामग्री, धरातलीय संपर्क अथवा संक्रमित वस्तुओं का पुनप्रयोग हो सकते हैं परंतु वायु, जल अथवा भोजन के द्वारा इबोला का संक्रमण नहीं होता है. संक्रमण काल में विषाणु पोषी के प्रतिरक्षा तंत्र की T - लिम्फोसाइट कोशिकाओं का विनाश करता रहता है और यह AIDS के विषाणु (HIV) से कहीं अधिक तीव्रता से आक्रामक होता है. अंततः ये कोशिकायें विषाणु आक्रमण के विरुद्ध प्रतिकायों का संकेतीकरण करना बंद कर देती है और व्याधिग्रस्त व्यक्ति की प्रथम रक्षक-रेखा निष्क्रिय हो जाने पर विषाणु का प्रतिलिपीकरण प्रारंभ हो जाता है. फलस्वरुप व्याधि के लक्षणों का प्राकट्य हो जाता है **(तालिका-1 देखें)**

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि - इबोला व्याधि का प्रथम संज्ञान मध्य अ्रीका के सुदूर ग्रामीण परिवेश में स्थित उष्ण कटिबंधीय वनों में किया गया. पश्चिमी अफ्रीका के अनेक ग्रामीण

अंचलों तथा कई महानगरों में भी इस व्याधि के कई मामले ज्ञात हुए. कांगो गणराज्य तथा सूडान के दक्षिणी भाग में वर्ष 1976 में अनेक व्यक्ति व्याधिग्रस्त हुये और 88 प्रतिशत की मृत्यु हो गई. सहारा के उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में इसकी व्यापक जानकारी हुई. वर्ष 1976 से 2013 के मध्य 1716 मामलों का संज्ञान किया गया. महामारी के स्वरूप में वर्ष 2014 में पश्चिमी अफ्रीका में इबोला व्यादि का प्राकट्य हुआ. 10 अक्टूबर 2014 तक इस व्याधि के कुल पंजीकृत मामले 8,376 हुये जिनमें से 4024 कालकवलित हो गये **(विवरण हेतु तालिका 5 देखें)**

व्याधि लक्षण - इबोला संक्रमण के प्राथमिक लक्षणों में प्रमुखता से अकस्मात उच्च ज्वर, तीव्र शिरोशूल, संधिगत तथा मांसपेशीय वेदना, न्यूनवर्ती क्षुधा तथा ग्रसनी अवरोध प्रदर्शित होते हैं. व्याधि का पूर्ण संज्ञान कई चरणों में उत्पन्न होने वाले लक्षणों पर आधारित है.

1. प्रादुर्भाव : इंफ्लूएंजा सदृश स्थिति, विश्रांति, ज्वराधिक्य, शिरोशूल, मांसपेशीय वेदना, उदरवर्ती शूल, वमन, अतिसार, क्षुधाहीनता के अतिरिक्त कतिपय मामलों में ग्रसनी अवरुद्धता, श्वास अवरूद्धता, हिचकी आदि प्रकट होते हैं. संक्रमण तथा लक्षणों के प्रादुर्भाव के मध्य 2 से 20 दिनों का अंतराल होता है.

2. प्रथम चरण - मलेरिया, डेंग्यू ज्वर अथवा अन्य

तालिका-1
इबोला विषाणु के संक्रमण का प्रसार

1.	संक्रमित व्यक्ति	→	विषाणुयुक्त उत्सर्जी द्रव्य- आंसू, पसीना, वीर्य, कफ	→	स्वस्थ व्यक्ति
2.	संक्रमित पशु/वानर/ चमगादड़	→	जूठे फल/ निकट संपर्क	→	स्वस्थ व्यक्ति
3.	संक्रमित व्यक्ति	→	सेवा सुश्रूषा कर्मी	→	स्वस्थ व्यक्ति
4.	संक्रमित शव	→	स्पर्श	→	स्वस्थ व्यक्ति
5.	सद्य : स्वास्थ्य लाभ प्राप्त व्यक्ति	→	यौनसंपर्क	→	स्वस्थ महिला
6.	संक्रमित टीकाकरण उपकरण कक्ष/ धरातल वस्त्रादि	→	उपयोग	→	स्वस्थ व्यक्ति

तालिका-5
इबोला व्याधि की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

वर्ष	स्थान/क्षेत्र	कारण	व्याधिग्रस्तता	मृत	मृत्यु दर
1976 (पूर्वार्ध)	जायरे (DCR) कान्गो (अफ्रीका)	रोगी के निकट संपर्क EBOV विषाणु	318	280	88 प्रतिशत
1976 (उत्तरार्ध)	दक्षिणी सूडान (अफ्रीका)	SUDV प्रजाति का संक्रमण	284	151	53 प्रतिशत
1976 (दिसम्बर)	नजारा-अफ्रीका	EBOV संक्रमण (अस्पताल में रोगी -संपर्क)	200 (चिकित्सक भी)	102	50 प्रतिशत
1976 (दिसम्बर)	ब्रिटेन-यूरोप	SUDVप्रजाति का संक्रमण	1	0	0
1977	जायरे (DCR) कान्गो (अफ्रीका)	EBOV संक्रमण	1	1	100प्रतिशत
1979	जायरे (DCR) कान्गो (अफ्रीका)	SUDVप्रजाति का संक्रमण	34	22	65 प्रतिशत
1989	USA(पेंसिलवेनिया) (विदेशी आव्रजक)	RESTV प्रजाति की उपस्थिति	-	-	-
1990 (पूर्वार्ध)	USA(वर्जीनिया) (विदेशी पर्यटक)	RESTV प्रजाति की वानरों द्वारा संक्रमण	4	-	-
1990 (उत्तरार्ध)	फिलीपीन्स	RESTV प्रजाति का मैकॉक वानरों द्वारा संक्रमण	3	-	-
1992	इटली-यूरोपट (फिलीपीन्स से आयात)	RESTV प्रजाति की उपस्थिति	(3 कार्यकर्ता भी ग्रस्त) (वानरों में सीमित)	-	-
1994 (पूर्वार्द्ध)	गैबोन (अफ्रीका) (प्रारंभिक स्वरूप-पीतज्वर)	EBOV का संक्रमण - EHF स्वरूप	52	31	50 प्रतिशत
1994 (उत्तरार्द्ध)	आइवरीकोस्ट क्षेत्र (अफ्रीका)	TAFV प्रजाति का संक्रमण-मृत चिम्पांजी का शवविच्छेद	1	-	-
1996	कान्गो (DRC) में संज्ञान/ किकविट क्षेत्र प्रभावित	EBOV का संक्रमण	315	250	81 प्रतिशत
1996	गैबोन-अफ्रीका/ मेईबोट क्षेत्र प्रभावित	EBOV संक्रमण (वानर/वन्य प्राणी भी प्रभावित)	37	21	57 प्रतिशत
1996	गैबोन-अफ्रीका/ बोयू क्षेत्र प्रभावित	EBOV संक्रमण (रोगी संपर्क)	60	45	74 प्रतिशत
1996	जोहान्सबर्ग क्षेत्र (अफ्रीका)	EBOV संक्रमण (चिकित्सक भी)	2	1	50 प्रतिशत
1996	USA-टेक्सॉस राज्य में संज्ञान	EBOV प्रजाति का संक्रमण	1 वानर)	-	-
1996	फिलीपीन्स में उपस्थिति	RESTV संक्रमण (वानरों में)	1	-	-
1996	रूस में इबोला की उपस्थिति	EBOV संक्रमण	1	1	100 प्रतिशत

उष्णकटिबंधीय विषाणुजन्य ज्वरों के सदृश लक्षणों का प्राकट्य.

3. अनुवर्ती स्थितियां - बाह्य तथा अंतस्तरीय रक्तस्राव, 40-50 प्रतिशत मामलों में शरीर के कई अंगों, श्लेष्माआवरणों से रक्तस्राव, यथा-आंत्रवर्ती रक्तवाहिनी, नासिका, योनि, मसूढ़े आदि सामान्यतः संक्रमणोपरान्त 5 से 7 दिनों में प्रकट होते हैं. आंतरिक ऊतकीय अथवा अंतर्त्वचीय रक्तस्राव, रक्ताम नेत्र तथा रक्तमिश्रित वमन भी उत्पन्न हो सकता है. अंतर्त्वचीय रक्तस्राव के कारण गहरे काले या गुलाबी धब्बे अथवा रक्तपूरित छाले भी प्रकट हो सकते हैं. कतिपय व्याधिग्रस्त व्यक्तियों के मल-मूत्र अथवा खांसी में रक्त का अंश भी प्रदर्शित होता है **(चित्र 1 देखें)**

4. रक्त परीक्षणात्मक संकेत - प्लेटलेट्स की घटती मात्रा, श्वेत रक्त कणिकाओं (WBC) की घटती मात्रा, यकृत प्रकिण्वों की वर्धित मात्रा तथा एलेनीत एमिनो ट्रांसफेरेज (ALT) तथा एस्पार्टेट एमिनो ट्रांसफेरेज (AAT) की मात्रा भी वर्धित होती है. उदरक्षेत्रीय रक्त थक्का प्रवर्तन के साथ-साथ DIC प्रवर्धित अंतप्रवाह रक्त थक्का जमाव का प्रादुर्भाव भी होता है. प्रोथ्रम्बिन, आंशिक थ्राम्बोप्लास्टिन (समयावधि) में विस्तार दृष्टिगोचर होता है. तीव्र रक्तस्रावी मामलों में, आंत्रवर्ती रक्तस्राव के परिणामस्वरूप मृत्यु भी संभव होती है.

लगभग सभी संक्रमित व्यक्तियों में कुछ न कुछ रक्तस्रावीय

2000-2001	युगान्डा (द.अमेरिका) गुलू/मसिंडी/मैब्रेरा	SUDV संक्रमण	425	224	53 प्रतिशत
2001-2002	गैबोन-अफ्रीका कान्गो/गैबोन सीमा	EBOV संक्रमण	65	53	82 प्रतिशत
2002-2003	DRC -अफ्रीका में पुनः संज्ञान	EBOV संक्रमण	57	43	75 प्रतिशत
2002-2003	अप्रैल 03 में भी पुनःसंज्ञान (मेबोमी/केली क्षेत्र)	EBOV संक्रमण	143	128	89 प्रतिशत
2003	DRC - अफ्रीका मबोमी/मेबोडांजा	EBOV का संक्रमण	35	29	83 प्रतिशत
2004	सूडान (अफ्रीका) में उपस्थित	SUDV का संक्रमण	17	7	41 प्रतिशत
2004	रूस में उपस्थिति (प्रयोगशालायें)	EBOV संक्रमण	1	1	100 प्रतिशत
2007	DRC(अफ्रीका	EBOV संक्रमण	264	187	71 प्रतिशत
2008	युगान्डा (द.अ.) (बंडीब्युग्यो क्षेत्र)	BDBV संक्रमण	149	37	25 प्रतिशत
2011	युगान्डा (द.अ.)	SUDV संक्रमण	1	1	100 प्रतिशत
2011	लुबेरो मंडल/सूडान (अफ्रीका)	EBOV संक्रमण	1	1	100 प्रतिशत
2012 (पूर्वार्द्ध)	युगान्डा में पुनः प्राकट्य-किम्बाले मंडल	SUDV (नई उपजाति) संक्रमण	11	4	36 प्रतिशत
2012 (उत्तरार्द्ध)	DRC कान्गो - पूर्वीक्षेत्र	BDBV संक्रमण	36	13	36 प्रतिशत
2013	युगान्डा में पुनः संक्रमण	SUDV संक्रमण	6	3	50 प्रतिशत
2014	अन्यान्य देशों में उपस्थिति	EBOV संक्रमण	4655	2431	52 प्रतिशत

लक्षण तथा रक्तथक्का जमाव प्रक्रिया में हीनता अव्य प्रकट होती है. संक्रमित व्यक्ति के उपचार के अभाव में बहुअंगीय कार्य निष्पादन अवरोध उत्पन्न हो जाता है जो सामान्य रूप से 7 से 16 दिनों के उपरांत प्रकट होता है और चरम अवस्था में मृत्यु हो जाती है. रक्त सीरोलाजिकल परीक्षण में विषाणुजन्य प्रतिजनों, विषाणु RNA अथवा संपूर्ण विषाणु की उपस्थिति इस व्याधि के

चित्र 1

इबोला व्याधि के प्राथमिक लक्षण

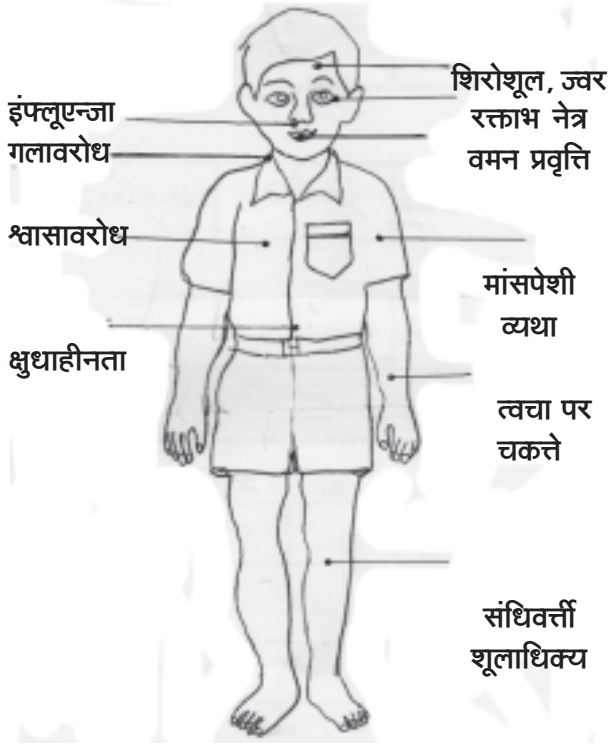

प्रमुख निदान माने जाते हैं **(चित्र 2 देखें)**

विषाणु विज्ञान - इबोला व्याधि की उत्पत्ति इबोला विषाणु के संक्रमण के कारण होती है. इसका प्रथम संज्ञान वर्ष 1976 में हुआ था. संज्ञान मध्य अफ्रीका महाद्वीप के कांगोगणराज्य (DRC) क्षेत्र में होने के कारण उस क्षेत्र की प्रमुख नदी 'ईबोला' के नाम पर विषाणु का नामकरण प्रचलित हुआ. एबोला विषाणु SS-RNA समूह-5 का सदस्य माना जाता है. मोनोनीगावाइरेलिज संवर्ग के अंतर्गत फिलोवाइरिडी परिवार का सदस्य है. इसका वैज्ञानिक नाम 'ईबोला जायरे' विषाणु है.

इबोला विषाणु तथा मारबर्ग विषाणु प्रारंभ में एक ही संवर्ग के सदस्य माने जाते थे. मार्च, 1998 में मेरुदण्ड धारी प्राणियों को संक्रमित करने वाले विषाणुओं के नामकरण हेतु गठित समिति ने फिलोवाइरिडी परिवार की दो पृथक विषाणु प्रजातियों का पुनः वर्गीकरण किया तथा ईबोला विषाणु की 5 उपजातियों का भी संज्ञान और स्थान निर्धारित किया गया.

इबोला विषाणु तथा मारबर्ग विषाणु प्रारंभ में एक ही संवर्ग के सदस्य माने जाते थे. मार्च, 1998 में मेरुदण्डधारी प्राणियों को संक्रमित करनेवाले विषाणुओं के नामकरण हेतु गठित समिति ने फिलोवाइरिडी परिवार की दो पृथक विषाणु प्रजातियों का पुनः वर्गीकरण किया तथा इबोला विषाणु की

चित्र 2

इबोला व्याधि के निदान हेतु रक्त-परीक्षण

1 प्लेटलेट्स अवपतन	2 श्वेतरक्त कण घटाव	3 यकृत प्रकिण्व उन्नयन

1 ALT,AAT प्रवर्धन	2 DIC प्रवर्धन	3 प्रोथ्राम्बिन प्रवर्धन

1 आंत्रवर्ती रक्तस्राव	2 रक्त थक्का जाम	3 थ्रांबोप्लास्टिन वर्द्धित

सीरम परीक्षण

विषाणु की उपस्थिति	विषाणुजनित RNA उपस्थिति
विषाणुजनित प्रतिजन उपस्थिति	

5 उपजातियों का भी संज्ञान और स्थान निर्धारित किया गया.

इबोला विषाणु की व्याधिसर्जक उपजातियां -1 EBOV (इबोला विषाणु) 2. SUV (सूडान विषाणु) 3. BDBV (बंडीब्युग्यो विषाणु) 4. TAFV (टाई अरण्य विषाणु) 5. RESTV (रेस्टॉन विषाणु) EBOV उपजाति सर्वाधिक संकटकारी मानी जाती है जबकि RESTV उपजाति मनुष्यों में संक्रमण नहीं करती है (चित्र 3 देखें)

संरचना - इबोला विषाणु ऋणात्मक RNA वंशानुक्रमयुक्त विषाणुकणों (Virions) से युक्त होता है जो बेलनाकार या नलिकाकार आवरण युक्त होते हैं. इनमें न्यूक्लियोकैप्सिड प्रत्यंश तथा मैट्रिक्स भी विद्यमान होते हैं. इनकी आकृति सामान्यतः लगभग 80nm व्यास युक्त होती है जिनमें विषाणुप्रकृति वाली प्रकूटित ग्लायकोप्रोटीन (GP) होती है. 7 से 10nm लम्बाईवाले कई निक्षेप इसके लाइपिड युक्त धरातल (द्विस्तरीय) के बाहर की ओर प्रसरित रहते हैं.

बेलन विभिन्न लम्बाई के हो सकते हैं और प्रारूपिक रूप में लगभग 80nm लम्बे होते हैं. अधिकतम लम्बाई 1000nm होती है.

विषाणुकणों के बाह्य आवरण वास्तव में पोषी के कोशिकीय आवरण के अंशों से ही निर्मित होते हैं क्योंकि विषाणु की GP से निर्मित निक्षेप पोषी कोशिका के आवरण को भ्रंशित करते रहते हैं. इस विचित्र प्रक्रिया को जैविक संश्लेषण कहा जाता है. एकल GP अणुओं के मध्य लगभग 10nm का अंतर होता है. विषाणु प्रोटीनें - VP40 तथा VP24 विषाणु आवरण तथा न्यूक्लियो कैप्सिड के मध्य स्थित मैट्रिक्स में विद्यमान रहती हैं. विषाणु कण के केन्द्र में न्यूक्रियो कैप्सिड होता है, जो विषाणु प्रोटीनों की श्रृंखला से निर्मित होता है. ये प्रोटीनें 18-19 KB (किलोबाइट) लम्बवत ऋणात्मक प्रकृति RNA से निर्मित होती हैं तथा 3' बहुएडीनाइलीकृत अथवा 5' उपस्कर हीन होती है. RNA कुंडलित तथा प्रोटीनों (NP,VP35 एवं VP40) से जटिल रूप से संयुक्त रहता है. व्यास 80nm होती है तथा एक केन्द्रीय चैनल (व्यास 20-30nm) भी होता है. फिलोवाइरिडी के सदस्य विषाणुओं के कणों की आकृति पृथक पृथक होती है परन्तु संरचना सामान्यतया सूत्राकार ही होती है.

वंशानुक्रम - समस्त मोनोनीगावाइरसों के विषाणुकण लम्बवत्, वलयहीन, एकलसूत्री संक्रमणीय RNA वंशानुक्रमोंयुक्त होते हैं. इनमें ऋणात्मक ध्रुवीयता वाले 3'5' उल्टे, परिपूरक अंतिम सिरे स्थित होते हैं. ये बहुएडीनाइलेटेड 5' उपस्कर विहीन होते हैं. प्रोटीन के साथ सहसंयोजन नहीं करते हैं. वंशानुक्रमों के आधार युग्म लगभग 19kb लम्बे होते हैं. इनके 7 वंशाणु एक विशिष्ट क्रम में आबद्ध रहते है (3'UTR, NP, VP35, VP40, GP, VP30, VP24, LS'UTR) इबोला विषाणु की 5 भिन्न उपजातियों के वंशाणु की क्रमबद्धता भी भिन्न-भिन्न होती हैं. इसके अतिरिक्त इनकी संख्या, स्थिति और संलिप्तता भी भिन्न होती है.

सूक्ष्मदर्शीय संरचना - फ्लेवोवाइरसों के सदृश इबोला

चित्र 3
इबोला विषाणु का वंश वृक्ष
फिलोवाइरस संवर्ग

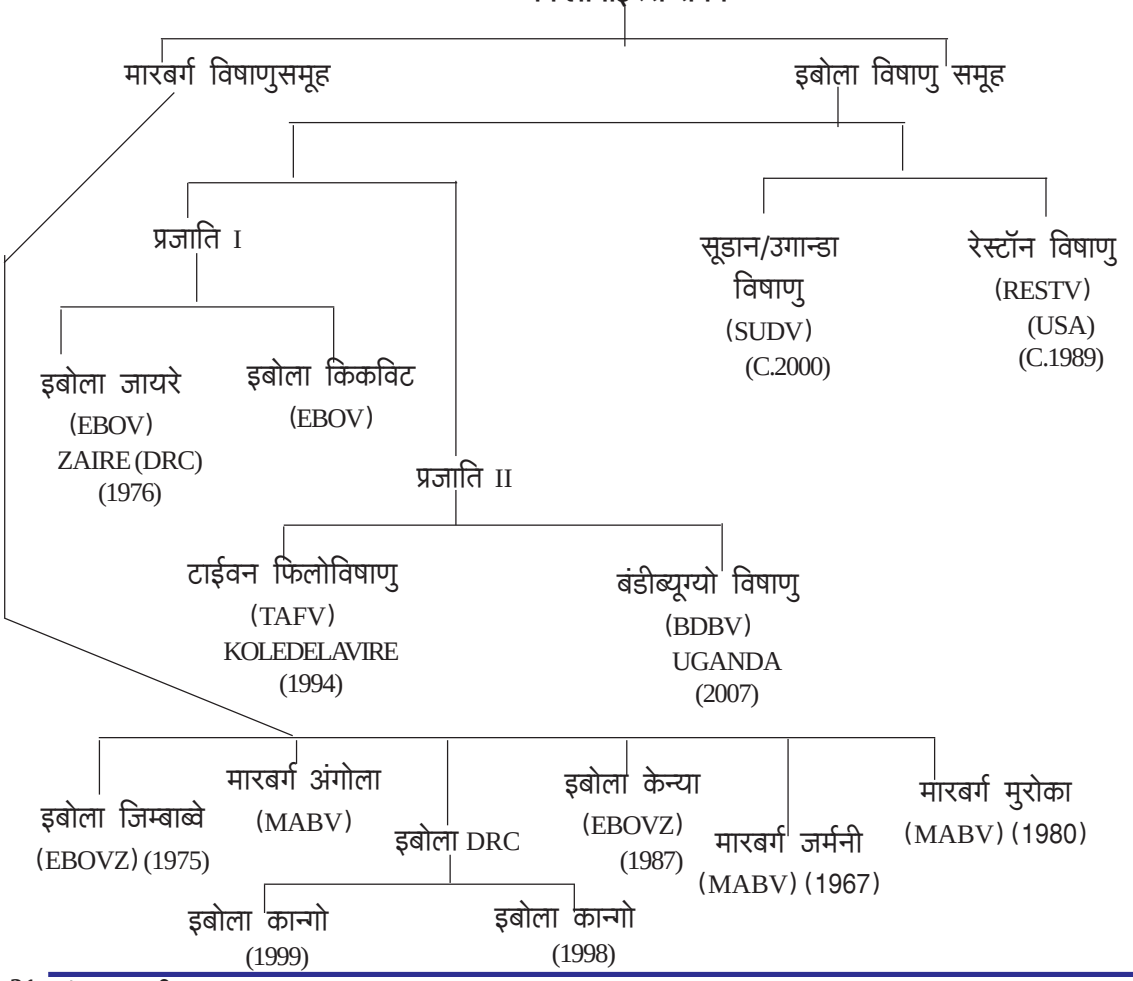

विषाणु भी सूत्रीय आकृतिवाले कणों के रूप में होते हैं जो वस्तुतः प्रश्नवाचक चिन्ह (?) की आकृति अथवा 'U' या '6' की भांति दिखाई देते हैं. ये शाखायुक्त अथवा वलयित आधार युक्त भी होते हैं. सामान्यतः EBOV विषाणु 80nmगोलाई के देखे गए हैं परंतु इनकी लम्बाई में विविधता हो सकती है. औसत लम्बाई 974nm से 10786nm तक होती है. प्रयोग शाला में ऊतक संवर्धन की स्थिति में इनके विषाणुकण प्रायः 14000nm तक लम्बाई युक्त प्रदर्शित हुए हैं **(चित्र 4 देखें)**

विषाणु का जीवनचक्र - इबोला विषाणु के प्राकृतिक भण्डारधारी चमगादड़ माने जाते हैं परंतु अन्य भण्डार वनस्पति वर्ग, पक्षी तथा कीट संवर्ग के सदस्य भी देखे गए हैं. वनप्रदेशों में इस विषाणु का प्रसार चमगादड़ों द्वारा आंशिक रूप से खाए हुए फलों के (जो नीचे गिर जाते हैं) स्तनधारी प्राणियों द्वारा खा लिए जाने के कारण होता है. अधतन 13 उपजातियों के जमगादड़ों में EBOV के RNA अंशों की विद्यमानता के प्रमाण प्राप्त हों चुके हैं. इनमें तीन मुख्य उपजातियों Hypsignathus monostrosus, Epomops franqueti तथा Nynocteris torquata का संज्ञान किया जा चुका है. बांगलादेश के फलभक्षी चमगादड़ों में जायरे तथा रेस्टॉन विषाणुओं के प्रतिकायों की उपस्थिति के प्रमाण मिले हैं. 1976 से 1978 के मध्य दक्षिणी अफ्रीका में लगभग 30,000 स्तनधारी, पक्षी, सरीसृप, उभयचर, कीटवर्गीय प्राणियों में एबोला के आनुवंशिक अवशेषों का संज्ञान हुआ है. इनके अतिरिक्त 6 कर्तन क्षमता वर्गीय प्राणियों तथा एक प्रजाति की छछूंदर में भी इनकी उपस्थिति प्रदर्शित हो चुकी है. पशुवर्गीय उपचक्र के मुख्य कारकों में EBZV (जायरे विषाणु) SUDV (सूडान विषाणु) TFOV (टाई विषाणु), BUBV (बंडीब्यूग्यू विषाणु) तथा RESV (रेस्टॉन विषाणु) शामिल हैं. RESV का संक्रमण मनुष्यों के अतिरिक्त अन्य स्तनपायी पशुओं में हो सकता है.

महामारी सर्जक उपचक्र अनेक क्षेत्रों में EBOV के बहुलपोषी संक्रमण तथा मानवीय उच्च मृत्युदर का प्रादुर्भाव करता है. मानव से मानव में इस संक्रमण चक्र का परिणाम महामारी के रूप में देखा गया है. EBOV की शूल उत्पादक प्रोटीनें केकड़ाभक्षी मैकाक (Macaque) प्रजाति के वानरों में भी देखी गई हैं. 28 दिनों के अंतराल में उन्हें विषाणु के पराक्रम का अनुभव होता है. कतिपय मामलों में वे विषाणु प्रतिरोधी भी हो जाते हैं.

व्याधिविज्ञान - मानवीय संक्रमण परस्पर रक्त संपर्क या संक्रमित व्याक्ति के शारीरिक उत्सर्जी द्रव्यों के माध्यम से होता है. संक्रमित व्यक्ति के शव को लेपित करनेवाले व्यक्ति अथवा उसे समाधिस्थ करते समय शव के स्पर्श से भी संपर्क द्वारा संक्रमण की संभावना होती है. विषाणु से संक्रमित सुइयों या अन्य वस्तुओं के प्रयोग अथवा टीकाकरण के द्वारा इस विषाणु का प्रसार हो सकता है. शारीरिक उत्सर्जनीय द्रवों में संक्रमण का माध्यम संक्रमित व्यक्ति की लार, श्लेष्मा, वमन, कफ़, स्वेद, मल, अश्रु, दूध, मूत्र तथा वीर्य होते हैं. स्वस्थ व्यक्ति की नासिका, मुख, नेत्र, खुले घाव, छिले हुए आघात के द्वारा भी विषाणु का अंतः प्रवेश संभव होता है. अन्य प्राणियों के निकट सम्पर्क अथवा मांस सेवन से भी मानव संक्रमण होता है.

EBOV संक्रमण का प्रमुख लक्ष्य रक्त वाहिनियों की अंतः भित्ति की कोशिकायें होती हैं. इसके अतिरिक्त मोनोसाइट्स, यकृत की कोशिकाए तथा मैक्रोफाज कोशिकायें भी इसके आक्रमण का लक्ष्य होती हैं. विषाणुकणों के द्वारा निष्कर्षित घुलनशील GP(ग्लाइकोप्रोटीन) का संश्लेषण आरंभ हो जाता है. विषाणु का प्रतिलिपीकरण संक्रमित कोशिकाओं में प्रोटीन के संश्लेषण का उन्नयन करने लगता है. इसके परिणामस्वरूप पोषी की प्रति रक्षात्मक क्षमता का विनाश होने लगता है. GP वस्तुतः एक त्रिआयामी जटिल यौगिक होती है जो विषाणुकणों को अंतः स्तरीय कोशिकाओं से आबद्ध कर देती है. घुलनशील GP एक द्विआयामी प्रोटीन होती है जो WBC (न्यूट्रीफिल्स) की संकेतक प्रक्रिया से अंतर्मुखी हो

चित्र 4

इबोला विषाणुकण का इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शीय रेखाचित्र तथा सात आनुषंगिक प्रोटीनों के प्रकूटन क्षेत्र

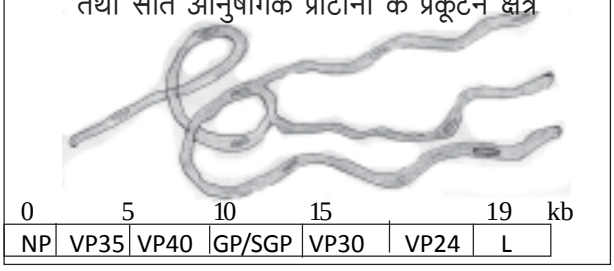

चित्र 4 B

इबोला विषाणु के वंशानुक्रम (-) SSRNA प्रारूप का रेखाचित्रण

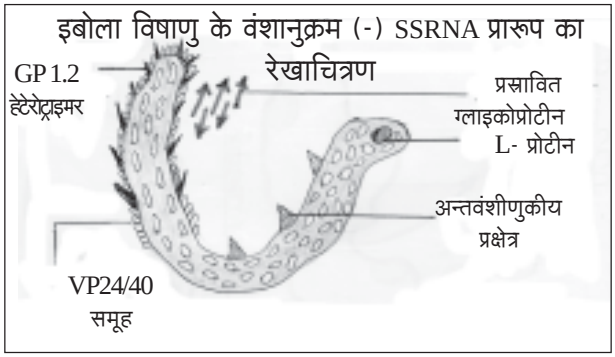

जाती है. इस प्रकार विषाणु को पोषी के प्रति रक्षा तंत्र को ध्वस्त करने का मार्ग प्रशस्त होने लगता है और न्यूट्रोफिल कोशिकाओं के कार्यशीलन को अवरुद्ध करना प्रारंभ हो जाता है. EBOV के परिवहन में भी सहायता मिलने लगती है और इसके परिणाम स्वरूप विषाणु पोषी के अनेक महत्त्वपूर्ण अंगों, यथा-लसीकाग्रंथियों, फेफड़ों, यकृत, तिल्ली इत्यादि में पहुंच जाता है. EBOV इंटरफेरॉन-β प्रोटीन के उत्पादन के कारण पोषी के प्रतिरक्षा तंत्र का क्षरण उत्पन्न करता है. विषाणु कणों के पुनर्जनन (Budding) और कोशिकाक्षरण के द्वारा कुछ रासायनिक संकेतकों (TNF-oc, IL-6, IL-8) का निष्कर्षण प्रारंभ होता है जो पोषी के शरीर में होनेवाले प्रदाह एवं ज्वराधिक्य के सर्जक होते हैं **(चित्र 5 देखें)**

विषाणु द्वारा रक्त वाहिनियों की अंतर्भित्तीय कोशिकाओं के संक्रमण के कारण उनकी संक्रियात्मकता का अवपात होना आरंभ हो जाता है. GP संश्लेषण सत्वरगति से होने पर यह अवपात त्वरित रूप ले लेता है क्योंकि संश्लेषित GP अपनी विशिष्ट प्रकृति के कारण अवपात त्वरण उत्पन्न करने में प्रभावी होता है. यकृत कोशिकाओं के क्षरण का प्रादुर्भाव होने के फलस्वरूप रक्त थक्का जमने की प्रक्रिया बाधित होने लगती है. विषाणु की प्रोटीनों के प्रत्युत्तरों के कारण अंतबधिक प्रोटीन "ϒ" तथा इण्टरफेरॉन oc और β सृजित होती हैं. VP-24 एवं VP-35 प्रोटीनों के कारण बाधा प्रवर्धित हो जाती है. संक्रमित कोशिका के साइटोसॉल में स्थित संग्राहक (RIG-1 तथा MDA-5) और साइटोसॉल के बाहर स्थित TO11 संग्राहक (TLR 8 तथा TLR-9) विषाणु के संक्रमणकारी अणुओं का संज्ञान कर लेते हैं. तत्पश्चात इण्टरफेरॉन नियामक घटक-3 तथा IRF-7 एक संकेतकीय अवनति उत्पन्न करते हैं जो टाइप-1 इण्टरफेरॉन्स के रूप में उदय होती है. ये निकटस्थ पोषी कोशिकाओं को मुक्त होते ही आबद्ध कर लेते हैं. इनके संक्रमणोंपरान्त IRF-1 एवं 2 संग्राहक धरातल पर प्रदर्शित होते हैं. एक बार जब इण्टरफेरॉन असंक्रमित कोशिका के संग्राहकों से आबद्ध हो जाते हैं तो संकेतक प्रोटीन (STAT-1 तथा 2) क्रियाशील होकर कोशिका के नामिक की ओर पलायन कर जाती हैं जो इण्टरफेरॉन द्वारा उत्तेजित वंशाणुओं की अभिव्यक्ति को अचानक प्रवर्तित कर देता है. ये वंशाणु ही प्रोटीनों का प्रकूटन करते हैं जिनमें प्रति विषाणु गुणधर्म होते हैं.

चित्र 5
इबोला विषाणु की व्याधि - कार्यिकी

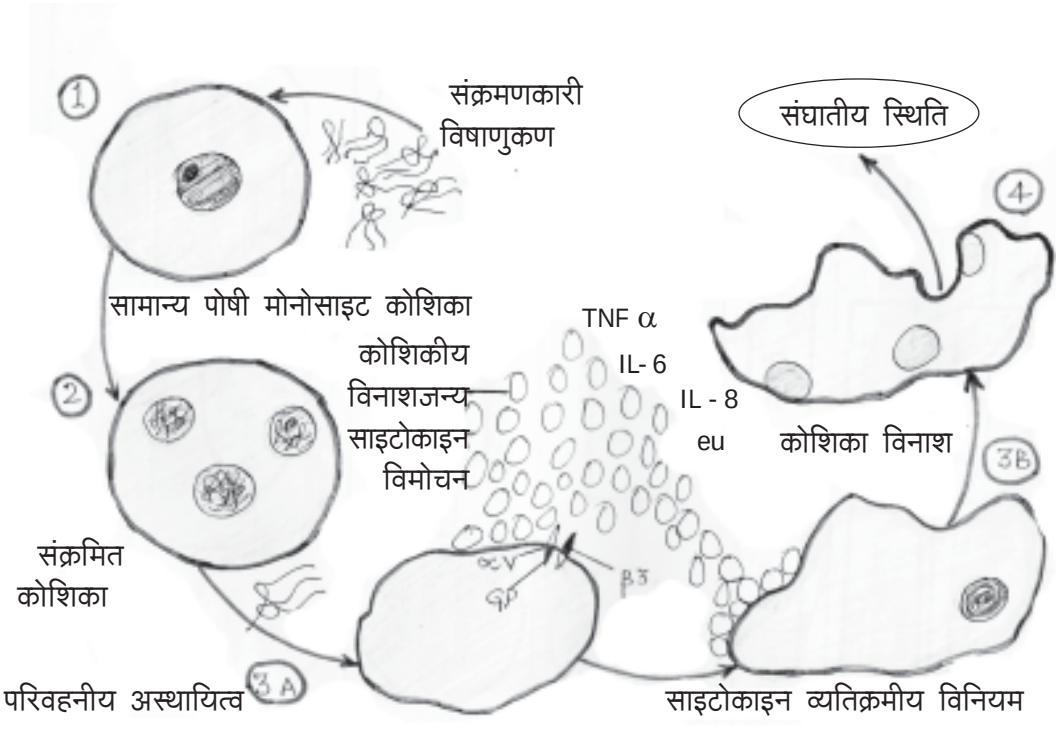

इबोला विषाणु जन्य VP24 प्रोटीन निकटवर्ती असंक्रमित कोशिकाओं में STAT-1 संकेतक प्रोटीन को कोशिका के धरातल में प्रवेश करने से बाधित कर देती है और VP-35 प्रोटीन इण्टर फेरॉन-β के उत्पादन को अवरुद्ध कर देती है.

प्रतिलिपीकरण - EBOV का जीवनचक्र विषाणुकणों के विशिष्ट रूप से कोशिकीय धरातल से आबद्ध होने के साथ ही संचालित होने लगता है. विषाणु कण का आवरण कोशिकीय आवरण के साथ अंतर्लीन होने लगता है साथ ही साथ विषाणु के न्यूक्लियोकैप्सिड का प्रवेश भी कोशिका के साइटोसॉल में प्रारंभ हो जाता है. विषाणु के L-विषाणु द्वारा प्रकूटित RNA पोलीमेरेज आंशिक रूप से न्यूक्लियो कैप्सिड को आवरणहीन कर देता है तथा वंशाणुओं को संरचनात्मक एवं असंरचनात्मक प्रोटीनों के स्वरूप में प्रतिलिप्यांकित करने लगता है. परिणामस्वरुप धनात्मक पट्टिकायुक्त MRNA उत्पन्न हो कर अनुवादीकरण को प्रश्रय प्रदान करते हैं.

इबोला विषाणुजन्य RNAL-पोलीमेरेज से (एकल उन्नयक से) आबद्ध होता है जो विषाणु के वंशानुक्रम के 3′ सिरे पर स्थित होता है. प्रतिलिप्यांकन यहां पर संपन्न हो जाता है या फिर अन्य वंशाणुओं के प्रवर्तन हेतु सतत होता रहता है. वंशानुक्रम के 3′ सिरे से निकटस्थ वंशाणुओं में प्रतिलिप्यांकन की प्रबल संभावना होती है परंतु 5′ सिरे पर स्थित वंशाणु न्यूनतम मात्रा में ही प्रतिलिप्यांकित हो पाते हैं. इस प्रक्रिया के अंतर्गत सर्वाधिक मात्रा में उत्पन्न प्रोटीन न्यूक्लियोप्रोटीन होता है जिसकी सान्द्रता ही प्रतिलिपीकरण प्रक्रिया के प्रारंभ होने का समय निर्धारण करती है. प्रतिलिपीकरण के फलस्वरूप पूर्ण आमानधारी घनात्मक पट्टिका युक्त प्रतिवंशाणुक्रमों की उत्पत्ति होती है जो ऋणात्मक पट्टिकायुक्त विषाणु संतति वंशानुक्रम प्रतिलिपि के रूप में अंकित होने लगते हैं. नवसंश्लेषित रचनात्मक प्रोटीनें तथा वंशानुक्रम स्वयं ही कोशिकावरण की अंतर्भित्ति पर एकत्र हो जाते हैं और विषाणुकणों का प्रादुर्भाव होने लगता है. परिपक्व संतति कण अन्य कोशिकाओं को संक्रमित करने लग जाते हैं. इस प्रकार विषआणु का जीवनचक्र सतत चलता रहता है परंतु वास्तव में EBOV के अनुवंशिकीय रहस्यों का अध्ययन दुरूह कार्य है.

तालिका - 2
वर्ष 2014 में इबोला व्याधि के कुल ज्ञात मामले और मृत्यु का रेखाचित्र

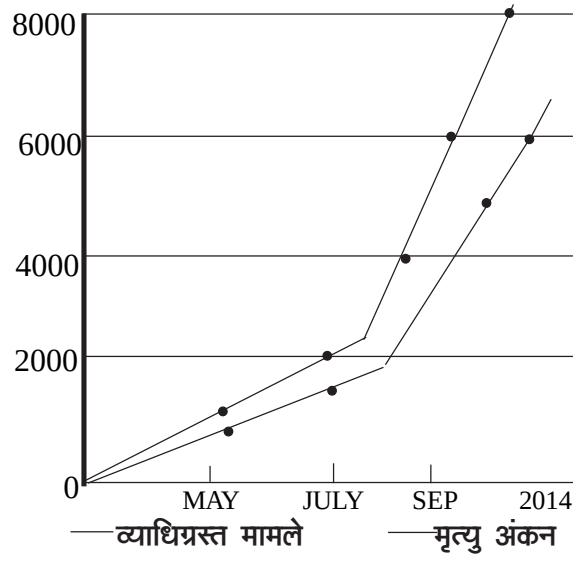

विकृति विज्ञान - इबोला विषाणु सर्वप्रथम शरीर के कोलेजन ऊतकों में आश्रय लेता है जो एक प्रकार के गोंद के समान विभिन्न अंगों को उनके नियम स्थानों पर बनाये रखते हैं. विषाणु ऊतकों का भक्षण करने लगता है अतएव विविध समस्यायें उत्पन्न होने लगती हैं. व्याधिग्रस्त व्यक्ति की त्वचा का बाह्यस्तर अंतरंग रूप से द्रवीभूत होने लगता है अतः छोटे-छोटे फफोले और श्वेतशाम चेकत्ते प्रकट हो जाते हैं. अल्प दबाव से फूटने लगते हैं. त्वचा के ऊपर चीरे (Rips) प्रदर्शित होने लगते हैं जिनसे अचानक रक्तस्राव हो सकता है. कतपिय अन्य मामलों में शरीर के अन्यान्य विवरों (Orifices) से भी रक्तस्राव प्रदर्शित हो सकता है, यथा-नासिका, नेत्र, मुख, योनि आदि.

प्रतिरक्षी कोशिकायें (Macrophages) रक्त धक्का निर्माण को उद्दीप्त कर देती हैं अतः अधिकांश रक्तवाहिनियों में लघुरूप में थक्क उत्पन्न होने लगते हैं. इस स्थिति में की रक्तवाहिनियों में विस्फोट हो सकता है अथवा रिसाव प्रकट हो सकता है. कालांतर में रक्तापूर्ति अवरुद्ध हो सकती है और अनेक महत्त्वपूर्ण अंगों में न्यून रक्त आपूर्ति (परिवहनीय संकट) तथा पर्याप्त आक्सीजन की अनुपलब्धता प्रकट हो सकती है. अंततः अंग अपना कार्य बंद कर देते हैं. यकृत में यह स्थिति भयंकर हो सकती है.

इबोला संक्रमण के कारण उग्र अतिसार के साथ-साथ वमन की अतिरेक स्थिति भी उत्पन्न होती है. रक्त निष्कर्षित हो सकता है. चरम संक्रमण में प्रतिरक्षा प्रणाली अस्त-व्यस्त हो जाती है और यह तंत्र व्याधिग्रस्त व्यक्ति के प्रति आक्रामक व्यवहार करने लग जाता है. कभी कभी नेत्रों में रक्तवर्णता भी प्रकट हो जाती है. शनैः शनैः एक के पश्चात दूसरे अंग के कार्य-निष्फलन के परिणामस्वरूप व्याक्ति को आघात का अनुभव होने लगता है जिसकी अंतिम परिणति मृत्यु हो

तालिका - 3

इबोला व्याधि - नियंत्रण हेतु उपाय

1. उपस्कर एवं धरातलीय विसंक्रमण तथा वायु शोधन
2. सुरक्षात्मक परिधानों का उपयोग अत्यावश्यक
3. मास्क, दस्तानों, गाउन, चश्मों आदि का विसंक्रमण
4. इबोला व्याधि से मृत व्यक्तियों के शवों से संपर्क निषेध
5. जनजागरूकता कार्यक्रमों का आयोजन
6. सामान्य स्वच्छता, मांसाहार निषेध
7. इबोला व्याधि से मृत शवों का दफन करते समय सुरक्षा
8. इबोला विषाणु 60^0C पर 30-50 मिनट में नष्ट हो जाते हैं.
9. इबोला विषाणुओं का विनाश 100^0C तापमान पर 5 मिनट के उपरांत संभर होता है.
10. विसंक्रमण हेतु लाइपिड विलेयकों का उपयोग, यथा अल्कोहल युक्त उत्पाद, डिटर्जेन्ट, सोडियम हाइपोक्लोराइट, ब्लीचिंग पाउडर आदि.
11. इबोला व्याधि से मृत व्यक्तियों का यथासंभव विद्युत शव दाह

सकती है.

व्याधि-निदान - इबोला व्याधि का निदान मुख्य रूप से विषाणु पृथक्ककरण विधि से किया जाता है. प्रयोगशाला में रोगी के रक्त में विषाणु के RNA अथवा प्रोटीनों या प्रतिकायों क़े संज्ञान द्वारा व्याधि की पुष्टि की जाती है. विषाणु का निष्कर्षण कोशिका संवर्धन द्वारा किया जाता है. RNA का संज्ञान PCR (पॉलीमर चेन प्रतिक्रिया) तथा प्रोटीनों की उपस्थिति का संज्ञान ELISA विधि द्वारा प्रारंभिक स्थिति में करना श्रेष्ठ होता है. व्याधि की उग्र अवस्था में प्रतिकाय संज्ञान सफलतापूर्वक किया जा सकता है. यद्यपि व्यापक संक्रमण होने पर विषाणु का निष्कर्षण कष्टसाध्य होता है तथापि PCR और ELISA परीक्षण विश्वसनीय माने जाते हैं.

कोशिकासंवर्धन विधि में फिलोवाइरॉन इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी द्वारा द्रष्टव्य होते हैं क्योंकि इनकी विशिष्ट सूत्राकार आकृति सरलता से पहचानी जा सकती है.

भिन्नता प्रदर्शक निदान - इबोला व्याधि के सामान्य लक्ष्ण मारबर्ग विषाणु व्याधि के समान ही प्रकट होते हैं अतएव भ्रमवश कई अन्य विषाणुजन्य व्याधियों के रूप में निदान कर लिया जाता है. उदाहरण के रूप में ईबोला संक्रमण के लक्ष्ण अन्य विषाणुजन्य रक्तस्रावी ज्वर, फैल्सीपेरम मलेरिया, टायफॉयड, शिजेलॉसिस, रिकेटस, टायफस, Q -ज्वर, प्लेग, कैन्डिडाइसिस, हिस्टोप्लाजमोसिस, ट्रिपैनोसोमियासिस, लेशमानियासिस, रक्तस्रावी चेचक, खसरा, स्क्रब टायफस, विषूचिका, ग्राम निगेटिव सेप्टीसीमिया, बोरेलियासिस, प्रत्यावर्तीज्वर, आंत्रप्रदाह या यकृत विषाणुजन्य प्रदाह के सदृश ही होते हैं.

अनेक असंक्रमणीय व्याधियों के लक्षण भी इबोला के निदान हेतु भ्रमात्मक स्थिति उत्पन्न करते हैं, यथा PMCL (प्रोमाइलोसाइटिक ल्यूकीमिया), HUS (हीमोलाइटिक यूरेमिक सिंड्रोम), सर्प विषाक्तता, रक्त थक्का घटकहीनता, प्लेटलेट व्यतिक्रम, थ्राम्बोसाइटिक परप्यूरा, आनुवंशिकीय रक्तस्रावी टिलैंजिक्टेसिया, KSD (कावासाकी व्याधि) वॉरफॉरिन विषाक्तता आदि.

नियंत्रण - इबोला व्याधि के नियंत्रण हेतु निम्न प्रतिकारों की अनुशंसा की जाती है :-

1. अवरोधक निस्तारण, 2. उपस्करों /धरातलों का विसंक्रमण, 3. सुरक्षात्मक परिधानों का प्रयोग, 4. व्याधिग्रस्त मृत व्यक्रियों के शवों से संपर्क/स्पर्श निषेध, 5. जनजागरूकता/ स्वच्छता/मांसाहार निषेध, 6. शव समाधिस्थ करते समय पूर्ण सुरक्षात्मक कवच प्रयोग.

इबोला विषाणु उच्च तापमान (60 डिग्री) में 30 से 50 मिनट रखने पर नष्ट हो जाते हैं. 100 डिग्री तापमान में 5 मिनट तक ही जीवित रहते हैं. विसंक्रमण लाइपिड विलायकों (अल्कोहलयुक्त उत्पाद, डिटर्जेण्ट, सोडियम हाइपोक्लोराइट, ब्लीचिंग पाउडर इत्यादि) द्वारा किया जाता है **(तालिका 3 देखें)**

संक्रमण के दीर्घगामी परिणाम - दीर्घकाल तक व्याधिग्रस्तता प्रायः अनेक जटिलताए उत्पन्न करती है, यथा- अण्डकोशीय प्रदाह, संधिशूल, मांसपेशीय व्यथा, त्वचाभ्रंश, केशक्षय आदि. कतिपय व्यक्तियों में नेत्रगत प्रकाश संवेदनीयता, अतिशय अश्रुस्राव, अंतरंग नेत्रशूल, अंधता भी प्रकट होती है. सामान्यतः 25 प्रतिशत से 90 प्रतिशत व्याधिग्रस्त दीर्घकाल में समुचित उपचार के अभाव में काल-कवलित हो जाते हैं. कांगो गणराज्य में वर्ष 2002/2003 में 90 प्रतिशत व्याधिग्रस्त व्यक्तियों की मृत्यु हो गई थी **(तालिका 4 देखें)**

उपचार - इबोला व्याधि के हेतु कोई विशिष्ट उपचार नहीं है तथापि प्रारंभिक संक्रमण की स्थिति में लक्षणाधारित प्रभावी उपचार तथा निर्जलीकरण के प्रति सावधानी और सहगामी प्रबंधन के द्वारा अनेक देशों में भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में इस व्याधि के शमन किए जाने के प्रमाण प्राप्त हुए हैं. विषाणु निष्प्रभावी हो जाने पर शीघ्र स्वास्थ्य लाभ होता है. बचाव के मुख्य उपायों में व्यथा प्रबंधन, ज्वर नाशक उपचार,

मितली (Nausea), भय के औषधीय उपचार तथा व्याधि की उग्रावस्था में अंतर्शिरा निर्जलीकरण अवरोधक जलीय उपचार लाभदायक होते हैं.

आवश्यकतानुसार रक्तरुधिरकणिका पैक, प्लेटलेट्स पैक

तालिका - 4

दीर्घकालिक इबोला व्याधिग्रस्तता-जन्य जटिलतायें

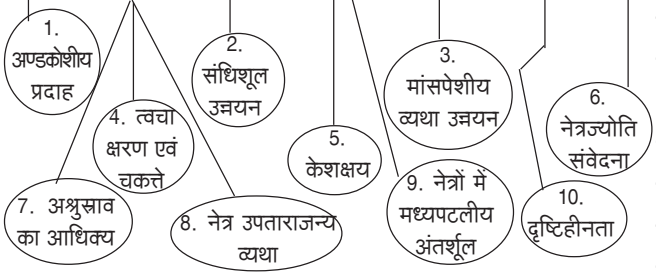

और हिमीकृत प्लाज़्मा का अवधान उत्तम होता है. जटिल रक्तस्रावी स्थिति में रक्त थक्का जमाव कारक द्रव्य - 'हिपैरिन' का प्रयोग भी प्रभावी होता है. रक्तमात्रात्मक एवं इलेक्ट्रोलाइट संतुलन तथा अनुरक्षण महत्त्वपूर्ण होता है. वृक्क कार्यविरोध में डायलिसिस के प्रयोग से उपचार आवश्यक होता है.

औषधीय शोधकार्य - इबोला व्याधि के उपचार हेतु अनेक प्रतिविषाणु औषधियों के निर्माण तथा प्रभावों का अध्ययन हो रहा है, इनमें मुख्य हैं :-

1. फैवीपीराविर - जापान में इस औषधि का इंफ्लूएंजा विषाणु के नियंत्रण और उपचार हेतु मूषकों पर प्रयोग सिद्ध हो चुका है, अतः जापान प्रशासन ने इसे स्वीकृति प्रदान की है.

2. BCX- 4430 - यह एक बहुआयामी लघु अणु आधारित औषधि है. इसका निर्माण बायोक्रिस्ट फार्मा ने किया है. संप्रति इसका परीक्षण मानवीय आधार पर जारी है. अमेरिका में भी इसके प्रथम स्तरीय परीक्षणों हेतु प्रशासन ने स्वीकृति दे दी है.

3. ब्रिंसिडोफोविर - अमेरिकी खाद्य एवं औषधि प्रशासन द्वारा स्वीकृत इबोला व्याधिहारी यह प्रतिविषाणु औषधि मनुष्यों के लिए भी प्रभावी पाई जा चुकी है.

4. लेमीब्यूडीन - HIV/AIDS व्याधि उपचार में प्रभावी इस औषधि का प्रथम संज्ञान सितंबर, 2014 में किया गया था. लाइब्रेरिया में इसका सफल परीक्षण 15 इबोलाग्रस्त रोगियों पर किया गया. इसका प्रयोग द्रवाधान तथा प्रतिजीवकों के साथ समेकित प्रबंध के रूप में किया जा चुका है.

5. अन्य प्रतिविषाणु औषधियां - इबोला व्याधि प्रबंधन हेतु कुछ अन्य प्रतिविषाणु प्रकृति युक्त उत्पादों का भी संज्ञान किया गया है - स्कायटोवीरीन, ग्रिफिथसीन तथा कुछ संश्लेषित द्रव्य FG-103, 104, 106, DUY-11 तथा LJ-001 आदि इनके उपचारीय, मानवीय परीक्षण अभी प्रगति पर हैं.

प्रतिसंवेदनात्मक प्रौद्योगिकी - ईबोला व्याधि की विश्वसनीय पद्धति वस्तुतः प्रतिसंवेदनात्मक प्रौद्योगिकी ही मानी जाती है. सूक्ष्म, लघु, हस्तक्षेपीय RNA तथा फास्फोरोडइमिडेट माँ रफोलिनो ओलिगोमर्स (PMO^S) दोनों ही इबोला विषाणु के RNA के L- प्रोटीन तथा पोलिमेरेज को लक्ष्य कर व्याधि के उन्मूलन में पूर्ण सक्षम सिद्ध हुए हैं. "TKM-EBOLA" एक व्यापक लघु हस्तक्षेपक RNA है और इसके प्रथम स्तरीय मानवीय परीक्षण संप्रति प्रगति पर हैं.

दो अन्य चयनित एस्ट्रोजेन संग्राहक नियमनकारी - क्लोमीफीन तथा टोरेमोफीन जो स्तन कैंसर, बंध्यापन के उपचार में प्रयुक्त होते हैं, ईबोला विषाणु के भी प्रतिरोधी सिद्ध हुए हैं. इनके प्रभाव का अध्ययन मूषकों पर किया जा चुका है. 90 प्रतिशत मूषक व्याधिमुक्त हो चुके हैं. एक अन्य शोध अध्ययन में 3 ऑयन-पथ-अवरोधकों का प्रयोग भी इबोला के उपचार हेतु किया जा चुका है - एमियोडॉरोन, ड्रोनेडॉरोन तथा वेरापामील-तीनों ही ईबोला क़े कोशिका में प्रवेश को बाधित करने में सक्षम सिद्ध हुये हैं. मिलैरोनीन का प्रयोग भी प्रभावी पाया गया है. Z-मैप एकल क्लोनीय प्रति काय का टीकाकरण भी एबोला व्याधि नियंत्रण हेतु प्रभावी सिद्ध हुआ है. WHO (विश्व स्वास्थ्य संगठन) ने ईबोला व्याधि के प्रबंधन हेतु रक्त-उत्पाद-अवधानों को शीर्ष वरीयता प्रदान की है. समेकित रक्ताधान अथवा विशुद्ध सीरम अवधान उत्तम और प्रभावी उपचार सिद्ध हुए हैं.

टीकौषधि हेतु शोध - अक्तूबर 2014 तक इबोला व्याधि नियंत्रण हेतु कोई टीकौषधि उपलब्ध नहीं थी. DNA आधारित या ऐनो विषाणु आधारित अथवा SIV (आमाशयी प्रदाह विषाणु), फिलोविषाणु सदृश कणों (FLVP^S) संबंधी टीकौषधियों के परीक्षण प्रगति पर हैं. मानवीय परीक्षणों की अनुमति अद्यतन प्राप्त नहीं हुई हैं. वर्ष 2003 में त्वरित प्रभावी टीकौषधि अनुसंधान की प्रक्रिया में ईबोला विषाणु की प्रोटीन युक्त एडेनोवाइरल वेक्टर आधारित टीकौषधि का प्राथामिक परीक्षण मैकॉक प्रजाति के वानरों पर किया गया. 28 दिनों के उपरांत वे सभी विषाणु के प्रतिरोधी क्षमता युक्त पाए गए. एक अन्य टीकौषधि का परीक्षण 2005 में संपन्न हुआ जो ऐटीनुएटेड रिकॉम्बीनैन्ट वेसीक्यूलर विषाणु युक्त थी. इसमें इबोला ग्लायकोप्रोटीन अथवा मारबर्ग विषाणु प्रोटीन भी उपस्थित था. इसके प्रभाव से मनुष्यों के अतिरिक्त मेरुदण्डधारियों में व्याधि नियंत्रण प्रदर्शित हुआ.

संप्रति इस दिशा में अन्य व्याधि निरोधक टीकौषधि अनुसंधान एवं परीक्षण का मार्ग प्रशस्त हो चुका है.

लेखक संपर्क : एच-3, बी-II नीलकमल एपार्टमेंट, प्रणामी मंदिर मार्ग, सिलीगुड़ी - 734001 (प.बंगाल)

होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता-2014 में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त लेख

वैश्विक तापमान वृद्धि और प्रदूषण नियंत्रण

- डॉ.हेमलता पंत

आज संपूर्ण विश्व में ग्लोबल वार्मिंग अथवा भूमंडलीय तापन अथवा वैश्विक उष्मन की समस्या एक अति भयंकर व महा प्रलयंकारी दानव का रूप धारण करती जा रही है, जो मानव, जीव-जंतु तथा समस्त सृष्टि को धीरे धीरे विनाश की ओर ले जा रही है. एक तरफ मानव-जीवन स्तर को अच्छे से अच्छा, ऊंचे से ऊंचा बनाने की चाहत और दूसरी तरफ हो रहा प्राकृतिक संसाधनों का अतिशय दोहन, समझ में नहीं आता मानव विकासोन्मुख हो रहा है या विनाशोन्मुख. इन्हीं सब तथ्यों के मद्देनजर प्रस्तुत लेख में विकास तथा उससे होने वाले पर्यावरणीय प्रभाव, विशेषकर ग्लोबल वार्मिंग का विश्लेषण किया गया है.

संपोषित विकास : अरबों वर्ष की जैव-रासायनिक प्रक्रियाओं और पर्यावरण विकास एवं निर्माण का परिणाम है हमारा भूमंडल. जीवन की अनिवार्यताओं में शामिल है स्वच्छ वायु और स्वच्छ जल. यूं तो जीवन के लिए अनेक पदार्थ जैसे मृदा, वनस्पति, खाद्यान्न आदि भी शामिल हैं, परन्तु इनका अस्तित्व भी वायु और जल की सुलभता और उपलब्धता पर ही निर्भर करता है. सोचने पर यह तथ्य आश्चर्यजनक लगता है कि मानव अस्तित्व के लिए आवश्यक ये तत्व आज मानव के अस्तित्व से ही आक्रांत हो रहे हैं. जहां मानव की उत्पत्ति का संबंध पर्यावरण की उत्पत्ति से है, वहीं उसके विकास का संबंध पर्यावरण के ह्रास से जुड़ गया है. विकास क्या है, इसके मुख्य अवयव क्या हैं, इसको किन प्राचलों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है, यह एक जटिल प्रश्न है. वास्तव में विकास एक बहुआयामी शब्द है, अतः इसकी परिभाषा भी संदर्भ के अनुसार भिन्न हो सकती है. विकास वह प्रक्रिया है जिसमें एक ओर तो राष्ट्रीय आय में तथा दूसरी ओर प्रति व्यक्ति आय में भी निरंतर वृद्धि होती रहती है. इस प्रक्रिया में समस्त उत्पाद साधनों का कुशलतापूर्वक विदोहन तो होता ही है, जनता के जीवन स्तर और जन कल्याण में भी वृद्धि होती है. आधुनिक जीवन में विकास का संबंध भौतिकता से हो गया है और नित नये वैज्ञानिक आविष्कारों ने मानव को काफी हद तक प्रकृति पर विजय दिला दी है. परंतु विकास की कीमत खाद्यान संकट, घटते भू-जलस्तर, वन विनाशन, भूमण्डलीय तापन, ग्लेशियरों के पीछे हटने से संपोषित वाहिनी नदियों में जलाभाव, हिमनदों के पिघलने से समुद्रों का बढ़ता जलस्तर, बाढ़, सूखा, मरूस्थलीकरण आदि के रूप में चुकानी पड़ रही है. विकास की राह मानव कल्याण की हो, न कि उसके ही अस्तित्व को खतरे में डालने की.

जनसंख्या के आधिक्य के कारण विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढा है तथा वैश्वीकरण के इस युग में आर्थिक विकास को अत्यधिक महत्व दिया गया है, जिसके फलस्वरूप प्रत्येक देश अपने संसाधनों का अधिक से अदिक अविवेकपूर्ण दोहन कर रहा है. संक्षेप में बात यह है कि हम जनसंख्या वृद्धि पर पर्याप्त अंकुश न लगा पाने के बजाय पर्यावरण विदोहन की सीढ़ियों पर चढ़कर लोलुपतापूर्ण अनियोजित विकास की होड़ में लगे हुए हैं, जो कि भविष्य में सभी जैव-अजैव अवयवों के लिए घातक सिद्ध होगा.

ग्लोबल वार्मिंग (भूमंडलीय तापन/वैश्विक उष्मन) : विभिन्न प्राकृतिक एवं मानव-जन्य गतिविधियों के कारण उत्सर्जित कुछ गैसें वायुमंडल की ऊपरी परत में फैल जाती हैं, जिनके कारण पृथ्वी की सतह से परावर्तित होने वाली सूर्य की किरणें वायुमंडल की परत के बाहर नहीं निकल पातीं और लौटकर पृथ्वी पर ही आ जाती हैं, जिससे पृथ्वी की सतह का तापमान बढ़ जाता है. इस को ग्रीन हाउस प्रभाव (पादप गृह प्रभाव) कहते हैं तथा इसका निर्माण करने वाली गैसों को ग्रीन हाउस गैस कहते हैं. इन ग्रीन हाउस गैसों के कारण पृथ्वी (भू-मंडल) का औसत तापमान उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है, इसको ग्लोबल वार्मिंग अथवा वैश्विक उष्मन कहते हैं. ग्लोबल वार्मिंग से जलवायु प्रभावित होती है, जिससे वर्षा में अनियमितता, सूखा, बाढ़, समुद्री जल स्तर में वृद्धि आदि घटनाएं होती हैं और समस्त जीव-जंतु, वनस्पति एवं मानव जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है.

कार्बन डाई आक्साइड, मीथेन, नाइट्रस आक्साइड, क्लोरा-फलोरो कार्बन एवं हैलोजन तथा जलवाष्प (बादलों के अतिरिक्त) को ग्रीन हाउस गैस माना जाता है. जलवाष्प एक मुख्य प्राकृतिक ग्रीन हाउस गैस है जो कि 36-70 प्रतिशत तक ग्रीन हाउस प्रभाव डालती है. मानवीय गतिविधियों के फलस्वरूप उत्सर्जित कार्बन डाई आक्साइड, मीथेन तथा ओजोन प्रमुख ग्रीन हाउस गैस हैं जो क्रमशः 9-26 प्रतिशत, 4-9 प्रतिशत तथा 3-7 प्रतिशत तक ग्रीन हाउस प्रभाव डालती हैं.

विभिन्न गैसों द्वारा पड़ने वाले ग्रीन हाउस प्रभाव को कार्बन डाई आक्साइड के सापेक्षित रूप में नापा जाता है, जिसको ग्लोबल वार्मिंग पोटेन्शियल (वैश्विक उष्मन क्षमता) कहते हैं. 2001 में प्रकाशित आईपीसीसी की तृतीय रिपोर्ट के अनुसार कार्बन डाई आक्साइड की तुलना में मीथेन लगभग 23 गुना, नाइट्रस आक्साइड 296 गुना, हाइड्रो-फलोरो-कार्बन-23 (एचएफसी-23) 12000 गुना और सल्फर हैक्सा फलोराइड (एसएफ-6) 22200 गुना अधिक ग्रीन हाउस प्रभाव डालती है. अतः कार्बन डाई आक्साइड के साथ-साथ अन्य गैसों की रोकथाम भी अत्यावश्यक है.

मानवीय गतिविधियों के कारण उत्सर्जित कार्बन डाई आक्साइड का तीन-चौथाई भाग पिछले 20 वर्षों में जलाए गए जीवाश्म ईंधनों से हुआ माना जाता है, तथा शेष एक-चौथाई भाग निरंतर बदलते भू-उपयोग, विशेषकर वनों की कटाई के कारण हुआ है. 1958 में कार्बन डाई आक्साइड की औसत सांद्रता 315 पीपीएम (पार्ट्स पर मिलियन) थी जो कि 2006 में बढ़कर 380 पीपीएम हो गई है, यह बढ़ोतरी 21 प्रतिशत है. वर्ष 1850 में यह लगभग 275 पीपीएम थी. विभिन्न प्रतिरूपों द्वारा अनुमान लगाया गया है कि इक्कीसवीं शताब्दी के अंत तक वातावरण में कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा 541 से 970 पीपीएम (औसत 750 पीपीएम) तक पहुंच सकती है. विभिन्न वर्षों तक वातावरण में कार्बन डाई आक्साडि की औसत सांद्रता चित्र 1 में दर्शायी गई है.

चित्र 1 : वातावरण में कार्बन डाई आक्साइड की औसत सांद्रता (अनुवीक्षित तथा अनुमानित)

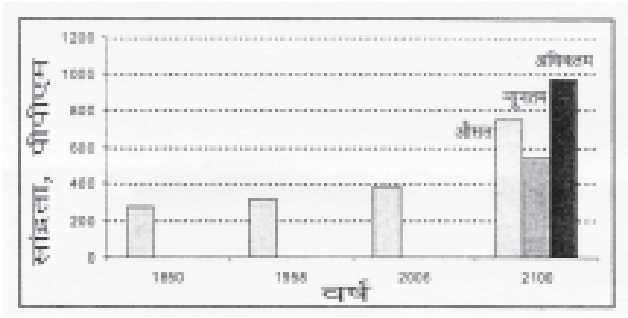

1850 से 1958 के मध्य कार्बन डाई आक्साइड की औसत मात्रा में प्रति दशक वृद्धि 3.7 पीपीएम थी, जो 1958 से 2006 की अवधि में तीन गुना बढ़कर 11.5 पीपीएम हो गई. 2006 से 2100 की अवधि में इसके 39.4 पीपीएम प्रति दशक की दर से बढ़ने की संभावना है. पर्यावरणविदों के लिए यह वृद्धि दर निश्चित रूप से चिंता का विषय होगी.

दूसरी मुख्य ग्रीन हाउस गैस मीथेन है, जो कि प्राकृतिक गैस की एक मुख्य घटक गैस है. मीथेन गैस जैविक क्रियाओं द्वारा तथा प्राकृतिक गैसों को ले जाने वाली पाईप लाईनों से होने वाले रिसाव के कारण वातावरण में फैलती है. जंगलों में प्राकृतिक रूप से होने वाले जैविक विघटन से काफी मात्रा में मीथेन गैस निकलती है. चावल के खेत, ठोस अपशिष्ट भराव की जगह, खनिज उत्खनन और पशुओं द्वारा की जाने वाली जुगाली से भी मीथेन गैस उत्सर्जित होती है. 1950 में वातावरण में मीथेन की औसत सांद्रता 700 पीपीबी (पार्टस पर बिलियन) थी जो कि 1985 में बढ़कर 1700 पीपीबी हो गई. तीसरी मुख्य ग्रीन हाउस गैस नाइट्रस आक्साइड की औसत मात्रा 1950 में 280 पीपीबी थई जो कि 1985 में बढ़कर 380 पीपीबी हो गई.

जनसंख्या वृद्धि - मूल कारण : यदि मानव-जनित गतिविधियाँ, वैश्विक उष्मन का कारण मानी जाएं, तो निरंतर बढ़ती जनसंख्या इसका मूल कारण है.मानव की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विभिन्न प्रकार के उद्योगों तथा वाहनों की संख्या, उर्जा की खपत आदि में अत्यधिक वृद्धि हुई है, जिसके फलस्वरूप पर्यावरण प्रदूषण में भी अत्यधिक वृदिध हुई है. औद्योगिक क्रांति के पूर्व 1750 में विश्व की कुल जनसंख्या 0.79 बिलियन थी जो कि 1950 तक 200 वर्षों में 2.52 बिलियन हो गई. आगामी 50 वर्षों में यह बढ़कर6.08 बिलियन हो गई, जो कि निश्चित रूप से अति तीव्र दर से हुई वृद्धि थी. वर्ष 1750 से 2000 तक तथा आगामी 100 वर्षों में अनुमानित जनसंख्या चित्र 2 में दर्शायी गयी है.

चित्र 2 : विश्व की कुल जनसंख्या (पूर्व में, वर्तमान तथा अनुमानित)

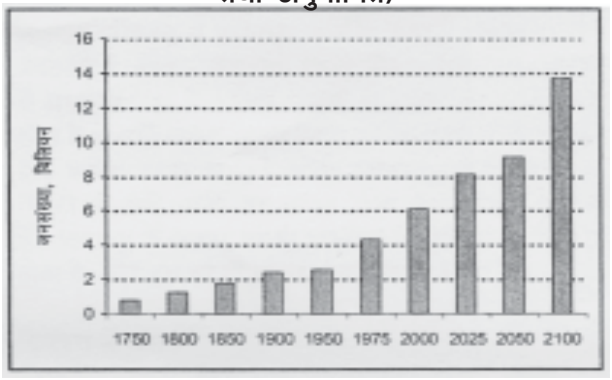

विश्व की कुल जनसंख्या को 1 बिलियन से 2 बिलियन होने में जहां 126 वर्ष लगे, वहीं 2 से 3 बिलियन होने मे 33 वर्ष और 3 से 4 बिलियन होने में मात्र 13 वर्ष लगे. तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या और तदनुरूप आवश्यक विकास के फलस्वरूप पर्यावरण प्रदूषण में अत्यधिक वृद्धि हुई, तथा अत्यधिक मात्रा में ग्रीन हाउस गैसें उत्सर्जित होकर वैश्विक उष्मन का कारण बनीं. संतोष की बात यह है कि 1974 के पश्चात जनसंख्या वृद्धि की दर लगभग स्थिर हो गई अथवा कम हो गई है. वर्ष 1999 में विश्व की कुल जनसंख्या 6 बिलियन होने का अनुमान है. यद्यपि जनसंख्या वृद्धि की दर बीसवीं शताब्दी की दर से काफी कम होगी, तथापि कुल जनसंख्या लगभग 2.3 गुना बढ़ जाएगी.

कुल जनसंख्या की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सभी प्रकार के संसाधनों यथा खाद्य पदार्थ, आवास, ऊर्जा, परिवहन, संचार आदि की मांग निरंतर बढ़ती ही रहेगी. जिसकी पूर्ति सुनिश्चित करने के लिए कृषि, उद्योग तथा अन्य सेक्टरों में निरंतर प्रगति एवं विकास की आवश्यकता होगी. आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रगति और विकास प्रकृति एवं पर्यावरण के अनुकूल हो तभी हम स्वस्थ एवं सुरक्षित भविष्य की कल्पना कर सकते हैं.

वैश्विक उष्मन के प्रभाव : ऐसा माना जाता है कि आदिकाल से जलवायु परिवर्तन प्राकृतिक रूप से होते रहे हैं, किंतु औद्योगिक क्रांति (वर्ष 1750) के पश्चात जलवायु तथा पर्यावरण, कृषि एवं औद्योगिक गतिविधियों के कारण निरंतर तीव्र गति से परिवर्तित हुए हैं. औद्योगिक क्रांति से पहले, मानवीय गतिविधियों द्वारा ग्रीन हाउस गैसें बहुत कम मात्रा में वातावरण में निःसृत होती थीं, किंतु अब इन गैसों की मात्रा काफी अधिक बढ़ गई है. औद्योगिक क्रांति के समय की तुलना में आज वातावरण में कार्बन डाई आक्साइड तथा मीथेन की मात्रा में क्रमशः 31 प्रतिशत तथा 149 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, जो कि पिछले 6,50,000 वर्षों में हुई वृद्धि की तुलना में काफी अधिक है.

बीसवीं शताब्दी में भू-मंडल का औसत तापमान लगभग 0.6 डिग्री सेंटीग्रेड बढ़ा है, जबकि जलवायु परिवर्तन पर अंतरशासकीय पैनल (आईपीसीसी) के अनुसार, इक्कीसवीं शताब्दी के अंत तक भू-मंडल का तापमान 1.1 से 6.4 डिग्री सेंटीग्रेड तक बढ़ने का अनुमान है. जो कि बीसवीं शताब्दी की तुलना में 2 से 10 गुना तक अधिक हो सकता है, जिससे पृथ्वी की जलवायु में व्यापक परिवर्तन हो सकते हैं. बीसवीं सदी के चार अधिकतर गर्म वर्ष 1990 के दशक में हुए माने जाते हैं, जबकि 2005 को अब तक का सबसे गर्म वर्ष माना जाता है.

वैश्विक उष्मन का सबसे अधिक प्रभाव ग्लेशियरों के पिघलने से समुद्र के जल स्तर में वृद्धि होना माना जाता है. गत 100 वर्षों में समुद्र का जल स्तर लगभग 15 से 20 सेंटीमीटर बढ़ा है जिसके कि आगामी 100 वर्षों में एक मीटर तक बढ़ने का अनुमान है. समुद्र का जल स्तर बढ़ने से प्रकृति तथा तटीय देश, क्षेत्र जलमग्न हो जाएंगे और तटीय क्षेत्रों में समुद्र का खारा पानी आ जाने से जीव-जंतु तथा वनस्पति के नष्ट होने का भी अनुमान है.

वैश्विक उष्मन से जलवायु प्रभावित होती है और जलवायु परिवर्तन से पर्यावरण प्रभावित होता है. प्राकृतिक तंत्र, वनस्पतियां, जीव-जंतु तथा मानव जीवन आदि सभी जलवायु से प्रभावित होते हैं. जिन फसलों से मनुष्य को भोजन प्राप्त होात है वे सभी अलग-अलग प्रकार की जलवायु पर निर्भर होती हैं. प्रत्येक फसल के लिए उचित तापमान, पर्याप्त वर्षा, धूप, मिट्टी में नमी आदि का उचित मात्रा में होना आवश्यक है. जलवायु के आधार पर ही प्राकृतिक वनस्पतियों का निधारण होता है, और इस पर ही मानव जीवन निर्भर करता है.

नियंत्रण के उपाय : वैश्विक उष्मन तथा जलवायु परिवर्तन अध्ययन से संबंधित वैज्ञानिकों का मत है कि विश्व का तापमान निरंतर बढ़ता रहेगा तथा इसके निवारण एवं प्रभाव को कम करने के लिए सभी देशों को राष्ट्रीय स्तर से लेकर व्यक्तिगत स्तर तक उचित कार्य करने की आवश्यकता होगी. वैश्विक उष्मन तथा जलवायु परिवर्तन से होने वाले दुष्प्रभावों को कम करने हेतु विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा सुझाव दिए गए हैं, जिनमें से निम्न सुझाव इस प्रयास में सहायक सिद्ध हो सकते हैं :

- जनसंख्या नियंत्रण एवं वृद्धि दर में निरंतर कमी
- नई तकनीकों का विकास जिनमें पर्यावरण प्रदूषण तथा ग्रीन हाउस गैस कम अथवा नगण्य मात्रा में उत्सर्जित होती हों.
- जीवाश्म ईंधन का कम से कम उपयोग
- अपरंपरागत ऊर्जा स्त्रोतों यथा सौर एवं वायु ऊर्जा, नाभिकीय ऊर्जा का अधिकतम उपयोग.
- ऊर्जा का संरक्षण एवं संयमित उपयोग
- वाहनों में कम प्रदूषणकारी वैकल्पिक ईंधनों का प्रयोग यथा सीएनजी, बायो-डीजल
- कार्बन की प्रतिपूर्ति एवं कार्बन कर
- कार्बन डाई आक्साइड गैस का अभिग्रहण तथा भंडारण
- नैनो-तकनीकी का विकास एवं उपयोग
- वनों की कटाई पर प्रतिबंध तथा वनीकरण को बढ़ावा
- भू-उपयोग प्रणाली में सुधार

- ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन पर प्रतिबंध
- रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर जैव-उर्वरकों का अधिकतम उपयोग पुनरुपयोगी पदार्थों से बनी वस्तुओं का अधिक से अधिक उपयोग आदि.

उपसंहार : विकास का उद्देश्य मुख्यतः मानव जीवन हेतु आवश्यक मूलभूत तथा अन्य सुख सुविधाओं की पूर्ति करना रहा है और रहेगा भी. विकास के लिए हो रही सभी प्रकार की गतिविधियों तथा अनुसंधानों का सीधा संबंध मानव जीवन से है. मानव जीवन को अधिक से अधिक सुख-सुविधा संपन्न बनाने हेतु प्रयास निरंतर चलते रहेंगे, जिसके लिए नई नई तकनीकों का विकास और उनका प्रयोग स्वाभाविक है. जिससे पर्यावरण और प्रकृति अछूते नहीं रह सकते. आवश्यकता इस बात की है कि विकास की इस दौड़ में हम लोलुप प्रवृत्ति न विकसित होने दें, अन्यथा सोने के अंडे देनेवाली मुर्गी के मालिक के समान ही मानव का भी हश्र हो सकता है.

विकास की राह मात्र आर्थिक विकास न होकर सर्व कल्याणकारी एवं संपोषित होनी चाहिए. संपोषित विकास से तात्पर्य न्यायसंगत और संतुलित विकास से हैं. संपोषित विकास तभी संभव होगा जब हम विभिन्न समुदायों के हितों, वर्तमान पीढ़ी और आने वाले पीढ़ी तथा विभिन्न संसाधनों के उपभोग के मध्य एक दूरगामी संतुलन निश्चित कर सकें. ऐसा करने के लिए आर्थिक, सामाजिक तथा पर्यावरणिय स्थितियों में समन्वय होना आवश्यक है. इस प्रकार संपोषित विकास से सभी को समान जीवन यापन के अवसर प्राप्त हो सकेंगे. किन्तु यह भी सत्य है कि विकास की विभिन्न धारणाओं, अंगो, उद्देश्यों तथा उनसे संबंधित असंख्य कार्यों को संतुलित रख पाना किसी भी राष्ट्र के लिए अत्यंत चुनौतीपूर्ण कार्य होगा. तथापि निरंतर विवेकपूर्ण प्रयासों से ही संपोषित विकास की दिशा में आगे बढ़ा जा सकता है. संपोषित विकास ही इस भूमण्डल को एक सही विकास की दिशा प्रदान कर सकता है और इसी दिशा में प्रत्येक व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र का कदम उठना चाहिए.

लेखक संपर्क : (एस.बी.एस.आर.डी.10/96 गोला रोड, नई झूसी, इलाहाबाद-211010)

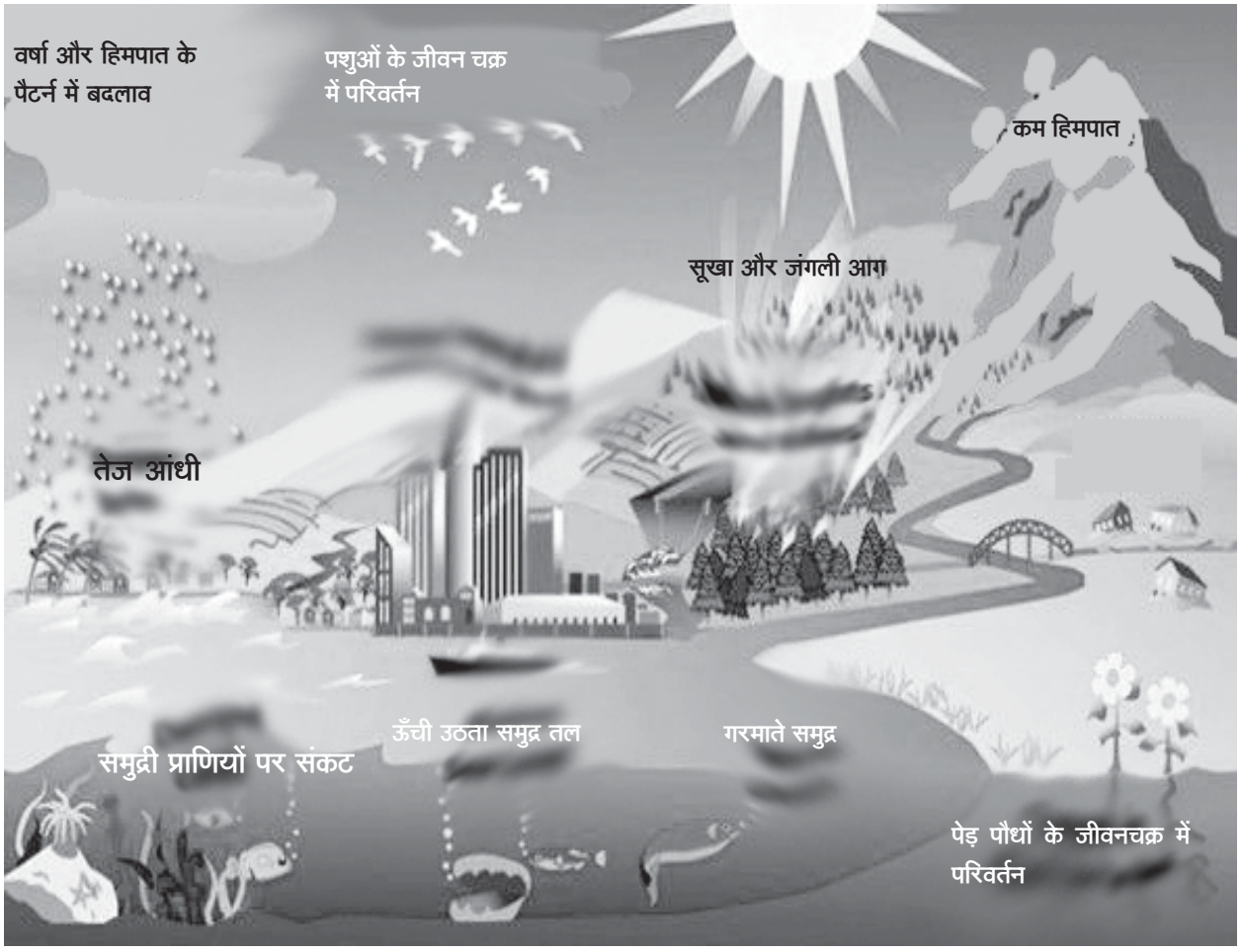

होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता-2014 में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त लेख

जल प्रदूषण

-डॉ.ए.के.चतुर्वेदी

ऑक्सीजन के उपरान्त जल जीवन के लिए अति आवश्यक है. मनुष्य के शरीर के भार का 70 प्रतिशत जल होता है. विश्व में पृथ्वी के चारों ओर जल है. 71 प्रतिशत जल है और 29 प्रतिशत में सतह है. सतह के कुछ भाग पर ही आबादी है. अधिकतर भाग पर पहाड़, जंगल, नदियाँ, झरने व तालाब हैं. जितना भी जल है उसका केवल 3 प्रतिशत जल पीने योग्य हैं. ताजा पीने योग्य जल ग्लेशियर (हिमखण्ड), पोलर आइस से प्राप्त होता है. इसी प्रकार भूजल गहरी चट्टान बनने के कारण एकत्रित होता रहता है.

जल की उत्पत्ति के लिए विश्व में हाइड्रोलाजीकल चक्र है. विश्व में पृथ्वी की आन्द्रता और समुद्र जल सूर्य की गर्मी से वाष्पीकृत होकर वायुमण्डल में चले जाते हैं. वहां धूल के कणों से मिलकर बादल का निर्माण करते हैं. जब बादलों में आद्रता अधिक हो जाती है. तो वह वर्षा या बर्फ के रूप में पृथ्वी पर आ जाती है. वर्षा जल झरनों, झीलों, नदियों द्वारा पृथ्वी में आद्रता पुनः उत्पन्न होती है. इस प्रकार हाइड्रोलोजीकल चक्र पूर्ण होता है. विश्व में जल की पूर्ति होती रहती है.

विश्व में जहां जहां जल उपलब्ध है वहां वहां आबादी बसी. फिर व्यापार शुरू हुआ. व्यापार होने से सभ्यता का विकास हुआ जो बढ़ता गया. जल का उपयोग आवागमन, सफाई, कृषि, पीने में किया जाता है. वैज्ञानिकों का मानना है कि जीवन की उत्पत्ति जल में ही हुई है. अतः जल का विशेष महत्व है. विकास एवं उन्नति से विश्व दो भागों में विभाजित हो गया है. एक भाग विकसित राष्ट्र कहलाता है. जहां विकास चरम पर है. उससे सम्पन्नता है. फिर विलासिता. दूसरा भाग विकासशील राष्ट्र है. जहां सम्पन्नता नहीं है. गरीबी है. सुख सुविधाएं नहीं है. जनसंख्या भी अधिक है. इससे जल का दोहन और उपयोग अधिक हो रहा है.

जनसंख्या विस्फोट के कारण औद्योगीकरण भी बढ़ा है. शहरीकरण भी बढ़ रहा है. वाहनों की संख्या में अपार वृद्धि हुई है. जीवाश्म ईंधन का अत्यधिक उपयोग किया जा रहा है. जंगलों, वनों की कटाई भी चरम पर है. इसके दुष्परिणाम दृष्टिगोचर हो रहे हैं. प्राकृतिक आपदाएं भूस्खलन, बाढ़ आना, सूखा पड़ना, जटिल रोगों की संख्या में अपार वृद्धि हो रही है. विकासशील राष्ट्रों में साफ-सफाई (सेनीटेशन) पर अधिक बल नहीं दिया जाता है. जनसंख्या विस्फोट, जंगलों की कटाई, सीमेन्ट कंकरीट के जंगलों को खड़ा करने से, औद्योगीकरण, शहरीकरण, वाहनों की संख्या में वृद्धि से जल और भूजल प्रदूषित हो रहे हैं. ग्लोबल वार्मिंग, जलवायु परिवर्तन के कारण विश्व में जल की कमी हो रही है. संयुक्त राष्ट्र संघ ने 2013 को अन्तर्राष्ट्रीय जल सहयोग वर्ष घोषित किया है. इससे सबको जल मिल सके.

कृषि में जल का उपयोग बहुत मात्रा में किया जाता है. जल की कमी को देखते हुए ऐसे प्रयास किए जाते हैं कि ऐसे बीजों का उपयोग किया जाए. जो कम जल का उपयोग कर उत्पादन अधिक दे सके. पेस्टीसाइड (कीटनाशकों) का भी उपयोग समुचित मात्रा में करना चाहिए. उससे भी जल प्रदूषित होता है.

जल का मुख्य स्त्रोत कुआं, तालाब, झीलें, नदियाँ हैं. आजकल जल की कमी हो रही है. साथ ही जल प्रदूषित भी हो रहा है. प्रदूषित जल पर्यावरण तथा स्वास्थ्य को प्रभावित करता है. जल रंगहीन, गंधहीन, दिखने में साफ, मीठें स्वाद वाला होता है. जल के PH का मान 7 से 8.5 के मध्य होता है. जल उच्च आवेशित, उच्च डाइइलैक्ट्रिक स्थिरांक, उच्च श्यनता, उच्च पृष्ठ तनाव, उच्च उष्म ताप वाला होता है. ये गुण विशेष स्थान की वनस्पति और जानवरों पर प्रभाव डालती है.

प्राकृतिक जल में विभिन्न आयन्स जैसे पौटेशियम (K^{++}), सोडियम (Na^{+}), मैग्नीशियम (Mg^{++}), कैल्शीयम (Ca^{++}), क्लोराइड (Cl^{-}), सल्फेट (SO_4^{--}), कार्बोनेट (CO_3^{--}), बाई कार्बोनेट (HCO_3^{-}), नाइट्रेट (NO_3^{-}) पाये जाते हैं. जल के नमकीन (सेलीनिटी Salinity) होने के लिए ये आयन उत्तरदायी होते हैं. प्राकृतिक जल और नमकीनता वनस्पतियों और जन्तुओं की विभिन्न स्पेसीज की उपलब्धता विभिन्न

क्षेत्रों के लिए उत्तरदायी है.

जल दो प्रकार का होता है. एक मृदु जल-जिस जल में क्लोराइड, सल्फेट, बाईकार्बोनेट, कार्बोनेट अनुपस्थित होते हैं, वह मृदु जल कहलाता है. यह साबुन के साथ शीघ्र झाग देता है. दूसरा कठोर जल-जिस जल में क्लोराइड, सल्फेट, बाईकार्बोनेट, कार्बोनेट उपस्थित होते हैं. वह कठोर जल कहलाता है. यह जल साबुन के साथ शीघ्र झाग नहीं देता है. कठोर जल मेराइन पर्यावरण देता है और मृदु जल प्राकृतिक पर्यावरण देता है. मेराइन और प्राकृतिक जल में सामन्जस्य स्थापित कर जलीय दुनिया का निर्माण होता है.

पीने योग्य जल रंगहीन, गन्धहीन, स्वाद में मीठा होता है. इस जल का PH मान 7–8.5 के मध्य होता है. इस जल में नगण्य मात्रा में लवण और धातुएं होती हैं. नदी के जल की शुद्धता निम्न मापदण्डों पर आधारित है. एक घुलित आक्सीजन (Dissolved Oxygen) है. जल में घुलित ऑक्सीजन की मात्रा कितनी है, जितनी अधिक होगी. जल उतना ही शुद्ध होगा. दूसरा बायो केमीकल आक्सीजन डिमाण्ड (बी.ओ.डी.) है. कार्बनिक पदार्थ को जीवाणु द्वारा आक्सीकृत करने के लिए आवश्यक आक्सीजन की मात्रा को बी.ओ.डी.कहते हैं. कार्बनिक पदार्थ की अधिक मात्रा आक्सीजन की मात्रा को कम करती है. तीसरा केमीकल आक्सीजन डिमाण्ड (सी.ओ.डी.) है. आक्सीजन की वह मात्रा जो जल में उपस्थित कार्बनिक और अकर्बानिक पदार्थ को आक्सीकृत करने के लिए आवश्यक होती है, सी.ओ.डी. कहलाती है. चौथा मापदण्ड कोलीफार्म की उपस्थित मात्रा है. कोलीफोर्म जीवाणु होते हैं. कोलीफार्म समूह में एरोबिक (Aerobic), एन एरोबिक ग्राम नगेटिव (Anaerobic gram negative) जीवाणु होते हैं. इनकी अल्प मात्रा ही सही रहती है.

जल में अन्य पदार्थों का मिलना या जल में उपस्थित पदार्थों की मात्रा का बढ़ना पोल्यूशन (Pollution) या प्रदूषण कहलाता है. पोल्यूशन शब्द लैटिन भाषा के शब्द पोल्यूशनम (Pollutionem) से लिया गया है. इसका अर्थ गन्दा करना है. जल, सोयल, हवा जीवन के लिए अनिवार्य हैं. जल, सोयल, हवा में अतिरिक्त पदार्थों के एकत्रित होने से इनके गुणों में परिवर्तन हो जाता है. इसे प्रदूषण या पोल्यूशन कहते हैं, जिन पदार्थों की उपस्थिति से सोयल, जल, वायु के भौतिक, रासायनिक गुणों में परिवर्तन होता है, उन्हें पोल्यूटेन्ट कहते हैं. पोल्यूटेन्ट, हानिकारक होते हैं.

पोल्यूटेन्ट दो प्रकार के होते हैं. एक बायो डिग्रेडेबिल पोल्यूटेन्ट, वे पदार्थ जो कार्बनिक वेस्ट और सीवेज को आक्सीकृत या सूक्ष्म जीवों द्वारा पूर्ण रूप से विखण्डित कर देते हैं. बायो डिग्रेडेबिल पोल्यूटेन्ट कहलाते हैं. विखण्डित होने पर दुर्गन्ध वाली गैस उत्पन्न करते हैं. दूसरा नॉन बायो डिग्रेडिबिल पोल्यूटेन्ट, वे पदार्थ जो कार्बनिक और सीवेज को आक्सीकृत या सूक्ष्म जीवों द्वारा पूर्ण से विखण्डित नहीं करते हैं. वरन वहां उपस्थित रहकर हानिकारक परिणाम देते हैं. नॉन बायो डिग्रेडेबिल पोल्यूटेन्ट कहलाते हैं. जैसे भारी धातुएँ क्रोमियम, केडमियम, मरकरी, डी.डी.टी.आदि.

जल के भौतिक, रासायनिक गुणों में परिवर्तन, कुछ पदार्थों की उपस्थिति से होता है, तो उसे जल प्रदूषण कहते हैं. जल प्रदूषण कई प्रकार का होता है. 1. भौतिक प्रदूषण, 2. अकार्बनिक प्रदूषण, 3. कार्बनिक प्रदूषण, 4. बॉयोलॉजिकल प्रदूषण, 5. पेस्टीसाइड प्रदूषण, 6. गारबेज प्रदूषण, 7. ऑयल प्रदूषण.

भौतिक प्रदूषण :- जिन पदार्थों के मिलने से जल का रंग, स्वाद, गन्ध में परिवर्तन हो जाता है, उसे भौतिक प्रदूषण कहते हैं. कुछ पदार्थ जल में मिलकर रंग देते हैं, जिससे जल रंगीन हो जाता है. कुछ सूक्ष्म जीव जल में मिलकर विशेष गन्ध देते हैं. जल का स्वाद भी परिवर्तित हो जाता है.

अकार्बनिक प्रदूषण :- कुछ उद्योगों के स्राव में सल्फाइड, नाइट्राइट, सल्फेट, फोस्फेट पाया जाता है. ये पदार्थ जल में मिलकर धीरे-धीरे विखण्डित होते रहते हैं. जिससे दुर्गन्ध गैसे निकलती है. अकार्बनिक पोल्यूटेन्ट से सी.ओ.डी. में परिवर्तन हो जाता है. जल प्रदूषित हो जाता है जो स्वास्थ्य को प्रभावित करता है.

कार्बनिक प्रदूषण :- उद्योगों के स्राव में कार्बनिक पदार्थ होते हैं, जो जल में मिलकर जल के PH मान क़ो परिवर्तित कर देते हैं, जिससे घुलित आक्सीजन, बायोकैमिकल आक्सीजन डिमाण्ड (बी.ओ.डी.) में परिवर्तन हो जाता है. पेस्टीसाइड, फंगीसाइड, बैक्ट्रीसाइड प्रायः कार्बनिक पदार्थ होते हैं. इनका सरलता से विखण्डन नहीं होता है और बी.ओ.डी. की मात्रा बढ़ा देते हैं जो अहितकर है. सरलता से विखण्डन होने वाले पदार्थ भी जल को प्रदूषित करते हैं.

सूक्ष्मजीवी प्रदूषण :- यह प्रदूषण प्लाण्ट टोक्सीन, कोलीफार्म, बैक्ट्रीरिया, स्पेटोकोकी वाइरस द्वारा उत्पन्न किया जाता है. सूक्ष्म जीव और वाइरस कई जलीय रोगों जैसे कोलरा, डिसेन्ट्री, टाइफायड, हैपाटाइटिस, गेस्ट्रोएनटेरीटिस, पोलियो रोगों को जन्म देते हैं. बैक्ट्रीरिया और वाइरस जल में उत्पन्न होकर जल को प्रदूषित करते हैं. यह बॉयोलॉजीकल प्रदूषण कहलाता है.

कचरा प्रदूषण :- प्रदूषण का मुख्य स्रोत गारबेज कहलाता है जो नदियों में पाया जाता है. क्योंकि नदियों में कूड़ा-करकट, गंदगी मिला दी जाती है. गारबेज में भारी धातुएं जैसे निकिल, क्रोमियम, कोबाल्ट, कैडमियम, लैड

भी पाये जाते हैं, जो हानिकारक है. इन धातुओं के कारण फाइटों टोक्सीसिटी लेवल अधिक हो जाता है, जो पेड़ों और मनुष्यों में रोग उत्पन्न करते हैं. गारबेज के सड़ने पर विखण्डन होता है जिससे गैसे निकलती हैं, जो दुर्गन्ध उत्पन्न कर, पर्यावरण को भी प्रदूषित करती है. गारबेज के जल में मिलने से जल प्रदूषित होता है.

तैलीय प्रदूषण :- जब जल में जीवाश्म ऑयल मिल जाता है तो जल प्रदूषित हो जाता है. जल की घुलित आक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है, जिससे जलीय जन्तु मर जाते हैं. जब ऑयल टेंकर के रिसाव के कारण या टेंकर के नष्ट होने के कारण ऑयल जल में मिलकर जल को प्रदूषित करता है, इसे ऑयल प्रदूषण कहते हैं.

कीटनाशक प्रदूषण :- कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए, फसलों में रोग उत्पन्न न हो कुछ रसायन छिड़के जाते हैं. ये रसायन पेस्टीसाइड कहलाते हैं. पेस्टीसाइड मिट्टी में पहुंच जाते हैं. फिर वर्षा जल के साथ सतह तथा भूमिगत जल को प्रदूषित कर देते हैं. यही पेस्टीसाइड प्रदूषण कहलाता है.

जल प्रदूषण कई कारणों से होता है. घरेलू बाहिस्राव या सीवेज डिसचार्ज-वैज्ञानिक मेटकाफ और इडी (Metcaff & Eddy) के अनुसार घरेलू बाहिस्राव में घुलित ठोस, सस्पेन्डेड ठोस नाइट्रोजन, कार्बनिक नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, क्लोराइड, कैल्शीयम कार्बोनेट, सिन्थेटिक डिटर्जेन्ट और जीवाणु पाये जाते हैं. दैनिक घरेलू कार्यों जैसे-खाना पकाना, स्नान करना, कपड़े धोना, घर की सफाई, फल सब्जियों का कूड़ा, गन्दा जल एवं अन्य प्रदूषणकारी अपशिष्ट पदार्थ होते हैं. वर्तमान समय में सफाई के लिए संशलेषित प्रक्षालकों का उपयोग तीव्र गति से बढ़ रहा है. ये जल स्रोतों के प्रदूषित कर रहे हैं.

वाहित मल : इसके अंतर्गत घरेलू एवं सार्वजनिक शौचालयों से निःसृत मानव मल-मूत्र आते हैं. वाहित मल में कार्बोनिक और अकार्बनिक पदार्थ होते हैं. ठोस मल का अधिकांश भाग कार्बनिक होता है. इमसें मृतोपजीवी, रोग कारक सूक्ष्मजीवी विद्यमान होते हैं. वाहित मल नाली, सीवर से होता हुआ जल स्रोत मुख्यता नदियों में सीधे मिला दिया जाता है. खुले स्थानों में मनुष्य और पशुओं द्वारा त्याज्य मल भी वर्षा जल के साथ बहता हुआ जल स्रोतों में मिल जाता है. जो जल प्रदूषण का कारण बनता है. जनसंख्या वृद्धि के कारण वाहित मल जल प्रदूषण की समस्या को जटिल बना रहा है.

औद्योगिक बहिस्राव :- विकास में उद्योगों का महत्वपूर्ण योगदान है. अत्यधिक औद्योगीकरण के कारण निकलने वाला बहिस्राव सीधे जल में मिला दिया जाता है. जिससे जल प्रदूषित हो रहा है. उद्योगों में उत्पादन प्रक्रिया के पश्चात अनुपयोगी पदार्थ बचे रह जाते हैं या उत्पन्न होते हैं, इन्हें औद्योगिक अपशिष्ट कहते हैं. अपशिष्ट में अम्ल, क्षार, लवण, वसा, तेल, धात्विक तत्व, विषैले रसायन विद्यमान होते हैं. जो जल में मिलकर जल को प्रदूषित करते हैं. कागज, चीनी, वस्त्र, चमड़ा, शराब, औषधि निर्माण, खाद्य प्रसंस्करण, रंगाई, छपाई उद्योगों से पर्याप्त मात्रा में अपशिष्ट निःसृत होते हैं. जिनका निस्तरण जल स्रोतों द्वारा मुख्यतया नदी में सीधे रूप से किया जाता है. औद्योगिक अपशिष्ट कार्बनिक पदार्थ होते हैं, जिनका अपघटन बैक्ट्रीरिया द्वारा होता है. यह क्रिया मन्दगति से होती है और दुर्गन्ध भी उत्पन्न करती है. धातुएं आर्सेनिक, लैड, मरकरी, क्रोमियम, लोहा, जिंक, तांबा जल के पी.एच.स्तर को अव्यवस्थित कर देते हैं. तेल, ग्रीस, चर्बी, वसा घुलित ऑक्सीजन की मात्रा को कम करती है. जिससे जलीय जन्तुओं विशेषकर मछलियाँ प्रभावित होती है.

कृषि बहिस्राव :- फसलों से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए नई-नई पद्धतियों को उपयोग में लाया गया. हरित क्रांति इसी का परिणाम है. नई पद्धतियों के अन्तर्गत रासायनिक उर्वरकों, अपतृण नाशकों, कीटनाशक दवाओं एवं सिंचाई के उपयोग में वृद्धि हुई है. अधिकांश उर्वरक अकार्बनिक फास्फेट, नाइट्रोजन होते हैं. उर्वरक वर्षा जल या सिंचाई जल के साथ वह कर भूजल में, पोखरों, तालाबों, नदियों तक पहुंच जाता है. नाइट्रोजन की अधिक मात्रा विशेषकर झील में ड्यूट्रोफिकेशन की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है. जिससे जल में शैवाल की वृद्धि हो जाती है. शैवाल के मृत होने से अपघटक बैक्टीरिया उत्पन्न हो जाते हैं. जैविक पदार्थों के अपघटन की प्रक्रिया से जल में आक्सीजन की कमी हो जाती है. जलीय जीवों की कमी होने लगती है. जल प्रदूषित हो जाता है.

दोषपूर्ण कृषि पद्धतियों से भूक्षरण में वृद्धि हो रही है जिससे नदियों का मार्ग अवरूद्ध हो जाता है. साथ ही नदी का तल ऊँचा हो जाता है. कीचड़ मिट्टी के जमाव से जल भी प्रदूषित हो जाता है.

अपतृणनाशक एवं कीटनाशक रसायनों का उपयोग बढ़ गया है. अधिकांश कीटनाशक विषैले पदार्थों जैसे मरकरी, लैड, फ्लोरीन, क्लोरीन, फास्फोरस आरसेनिक पदार्थों से बनाए जाते हैं. ये कीटनाशक फसलों पर छिड़के जाते हैं. इनकी मात्रा भूजल में पहुंच जाती है. सिंचाई जल से मिलकर पोखर, तालाब तक पहुंचकर, जल को प्रदूषित करते हैं.

ऊष्मीय प्रदूषण :- उत्पादक संयंत्रों में विभिन्न रिएक्टरों के अतितापन के निवारण के लिए नदी एवं तालाबों के जल का उपयोग किया जाता है. शीतलन प्रक्रिया के फलस्वरूप

प्रदूषण के विभिन्न स्त्रोत, कारक एवम् जनक तथा उनका जल पर प्रभाव.

वर्ण	स्रोत	जल पर प्रभाव
अम्ल एवं क्षार	कोयले की खानें, वस्त्र, रसायन उद्योग, इस्पात लगाना	जल का पी.एच.स्तर अव्यवस्थित होना, परिस्थितिकी संतुलन में परिवर्तन
क्लोरीन, फिनोल, फार्मलीन, हाइड्रोजन परआक्साइड	कागज, वस्त्र, पेंसिलीन रंग रासायनिक उद्योग	सूक्ष्म जीवाणुओं का विनाश स्वाद में परिवर्तन, दुर्गन्ध
लोहा, कैल्शीयम, मैग्नीशियम, क्लोरीन, सल्फेट	सीमेन्ट, धातु, कांच, चीनी मिट्टी उद्योग	जल की कठोरता, खारेपन का उत्पन्न होना
दृश्य एवं गन्धदायक पदार्थ	साबुन, चमड़े की रंगाई, खाद्य एवं मांस प्रशोधन, पेट्रोलियम शोधन शालायें	तेल, चर्बी, ग्रीस, रंग से घुलित आक्सीजन की मात्रा कम होना.
जीवाणुओं द्वारा अपघटन पदार्थ	चीनी, शराब उद्योग, चर्म शोधन, दुग्ध प्रशोधन, कागज, वस्त्र उद्योग	मत्स्य विनाश दुर्गन्ध
विषैले पदार्थ आरसेनिक सायनाइड, क्रोमियम, लैड, कैडमियम, जिंक, लोहा, तांबा	चर्म शोधन, वस्त्र उद्योग, बैटरी बनाना, प्लेट बनाना, क्लोरीन उत्पादन	मछली एवं फलेकटन का विनाश, विष का प्रभाव
रोग जन्म जीवाणु, वायरस	चमड़े की रंगाई, मुर्गी पालन अवशिष्ट जल	प्रदूषित जल से सिंचाई करने पर रोग उत्पन्न मानव, पशु और पौधों में संक्रमक रोग उत्पन्न

उष्ण हुआ जल पुनः जल स्रोतों में मिलाया जाता है. इससे जल स्रोतों के जल में ताप वृद्धि हो जाती है. यह हानिकारक होती है. उष्णीय प्रदूषण का प्रभाव जलीय जीवों पर पड़ता है. जल के तापमान बढ़ने से आक्सीजन की घुलनशीलता कम हो जाती है. लवणों की मात्रा बढ़ जाती है. उनका जीवन खतरे में हो जाता है. जीवाणुओं के ऊपर अनेक परिवर्तन होते हैं. जीव संरचन में परिवर्तन हो जाता है.

तैलीय प्रदूषण : समुद्रों में तेल प्रदूषण की संभावना अधिक है. तेलवाहक जहाजों से तेल समुद्र में गिरता है. कभी आग भी लग जाती है. यह तेल घुलित आक्सीजन की मात्रा को कम करता है. जलीय जीवों का जीवन समाप्त हो जाता है.

जल प्रदूषण की पहचान के लिए मापदण्ड निर्धारित किए गए हैं. जिनकी कमी या अधिकता होने पर जल प्रदूषित माना जाता है. भौतिक मापदण्ड-इसमें रंग, प्रकाश वैधता, संवहन एवं ठोस पदार्थ आते हैं.

रासायनिक मापदण्ड - इसमें घुलित आक्सीजन, बी.ओ.डी., सी.ओ.डी., पी.एच.मान, अम्लीयता या क्षारीयता, भारी धातुएं आती हैं.

जैविक मापदण्ड - इसमें बैक्ट्रीरिया, कोलिफार्म, एल्गी, वाइरस आते हैं.

नगरों, बस्तियों, उद्योगों से निस्तृत गन्दा जल जल स्रोतों में मिलकर, जल को प्रदूषित कर रहा है. उद्योगों से प्राप्त अपशिष्ट भी जल स्रोतों में मिलाया जाता है. इससे जल प्रदूषण विकराल रूप धारण कर चुका है.

जल प्रदूषण का प्रभाव जलीय जीवन एवं मनुष्य दोनों पर पड़ता है. जलीय जीवन पर जल प्रदूषण का प्रभाव पादपों एवं जन्तुओं पर परिलक्षित होता है. औद्योगिक अपशिष्ट एवं बहिस्राव में विद्यमान अनेक विषैले पदार्थ जलीय जीवन को नष्ट कर देते हैं. जल प्रदूषण का प्रभाग स्वास्थ्य पर सीधे रूप में पड़ता है. यह जल के संपर्क में आने से होता है. जल में उपस्थित रोग वाहक बैक्ट्रीरिया, वायरस, प्रोटोजोआ एवं कृमि मानव शरीर में पहुंच जाते हैं जिससे हैजा, टाइफाइड, शिशु प्रवाहिका, पेचिश, पीलिया, अतिसार, एक्जीमा, जियार्डियता, स्ट्रांजिवआइडियोसिस, लेप्टोस्पाइरोसिस रोग उत्पन्न हो जाते हैं. जल में उपस्थित रासायनिक पदार्थों के कारण उदरसूल, कोष्ठबद्धता, ब्रिक्क शोध, पादपात रोग उत्पन्न हो जाते हैं. यकृत, गुर्दे एवं मस्तिष्क पर विपरीत प्रभाव डालते हैं. जल प्रदूषण से संक्रमण रोग उत्पन्न हो रहे हैं. उद्योगों के प्रदूषणकारी तत्वों के कारण मछलियों का मर

जाना सामान्य बात हो गई है. मछलियों के मरने का तात्पर्य कारणों, दुष्प्रभावों एवं रोकथाम की विधियों के

पेयजल स्रोत (बिना उपचार)	कोलिफार्म एम.पी.एम. प्रकाशवरोध बी.ओ.डी.(बायोलॉजिकल ऑक्सीजन डिमान्ड) सी.ओ.डी. (केमिकल ऑक्सीजन डिमान्ड)	50/100 10 इकाई से कम 2 मि.ग्रा./ली.से कम 6 मि.ग्रा./ली.से कम
पेयजल स्रोत (उपचार के बाद)	कोलिफार्म एम.पी.एम. बी.ओ.डी.(बायोलॉजिकल ऑक्सीजन डिमान्ड)	500/100 मि.ली. से कम 4 मि.ग्रा./ली.से कम
स्नान, तैराकी एवं मनोरंजन	कोलिफार्म एम.पी.एम. बी.ओ.डी.(बायोलॉजिकल ऑक्सीजन डिमान्ड) सी.ओ.डी.(केमिकल ऑक्सीजन डिमान्ड)	5000/100 मि.ली.से कम 10 इकाई से कम 3 मि.ग्रा./ली.से कम

प्रोटीन के अच्छे स्रोत का समाप्त होना है. साथ ही मछली के व्यापार से जुड़े लोगों की आजीविका भी समाप्त हो जाती है.

जल प्रदूषण से क्षेत्र विशेष की जलीय परिस्थितिकी तंत्र प्रभावित हो रही है. जल प्रदूषण का प्रभाव कृषि भूमि पर पड़ता है. जब प्रदूषित जल कृषि भूमि से गुजरता है तो उस भूमि की उर्वरता नष्ट हो जाती है. रंगाई-छपाई उद्योग से निःसृत दूषित जल कृषि भूमि को बंजर बना रहा है. प्रदूषित जल से सिंचाई करने से कृषि उत्पादन प्रभावित होता है. उत्पादन चक्र में प्रदूषक आ जाते हैं जिससे उत्पादन कम हो जाता है. प्रदूषित जल से जल स्रोत का संपूर्ण जल परिस्थितिकीय तंत्र अव्यवस्थित हो जाता है.

जल प्रदूषण एक गंभीर समस्या बनती जा रही है. यदि इसकी रोकथाम की व्यवस्था न की तो समस्या विकराल रूप धारण कर लेगी. अतः रोकथाम करना आवश्यक हो गया है. जल प्रदूषण को बढ़ावा देने वाली प्रक्रियाओं पर रोक लगाना आवश्यक है. किसी प्रकार के अपशिष्ट या अपशिष्ट युक्त बहिःस्राव को जल स्रोतों से मिलने नहीं देना चाहिए.

घरों से निकलने वाले मलिन जल एवं वाहित मल को एकत्रित कर संशोधन संयंत्रों में पूर्ण उपचार करना चाहिए. कुओं, तालाबों के चारों ओर दीवार बनाकर विभिन्न प्रकार की गंदगी को रोकना होगा. जलाशयों के आस-पास गंदगी करने, नहाने, कपड़े धोने पर रोक लगानी होगी. पशुओं के जलाशय में नहलाने पर भी रोक लगानी होगी. उद्योगों के स्राव और अपशिष्टों का बिना उपचार किये जल स्रोतों में विसर्जित करने पर रोक लगानी होगी.

कृषि कार्यों में उर्वरकों एवं कीटाणुओं की मात्रा पर अंकुश लगाना चाहिए. समय-समय पर जलाशयों में उपस्थित अनावश्यक जलीय पौधे एवं तल में एकत्रित कीचड़ को निकाल देना चाहिए. जन साधारण के मध्य जल प्रदूषण के बारे में जागरुकता करनी होगी. जल का उपयोग करने वाले लोग जल को प्रदूषित न करें. सरकार द्वारा बनाये गये कानूनों का सही रूप में पालन करना होगा. जल प्रदूषण निरोधन एवं नियंत्रण अधिनियम 1974, जलकर प्रदूषण नियंत्रण एवं निरोधन अधिनियम 1979, पर्यावरण रक्षण अधिनियम 1980 का पालन कठोरता से करना होगा.

स्वयं सेवी संस्थाएं भी जन चेतना जागृत करने, जन साधारण को जल प्रदूषण रोकने का सराहनीय कार्य कर रही है. इसे और आगे बढ़ाना होगा. सभी का कार्य करना होगा, तभी जल प्रदूषित नही होगा.

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि जल प्रदूषण गंभीर समस्या है. इससे सभी प्रभावित हो रहे हैं. इस ओर सबका ध्यान आकर्षित करने की आवश्यकता है. सबके प्रयासों से ही जल प्रदूषण की समस्या समाप्त हो सकती है. तभी सभी का स्वास्थ्य अच्छा रहेगा. अच्छा स्वास्थ्य जीवन में आनन्द, उल्लास, उत्साह, उमंग, स्फूर्ति प्रदान करता है. जीवन में रंगीनियों का महत्व है. नये कार्य करने, परिश्रम करने की प्रेरणा मिलती है. यश-कीर्ति प्राप्त होती है. जल प्रदूषण को न रोका गया तो जीवन कष्टमयी हो जायेगा. रोगी होने पर जीवन में नीरसता आ जाती है. जीवन अभिशाप बन जाता है.

संदर्भ :- *1. एनवायरोमेन्टल केमिस्ट्री, कुदेशिया वी.पी.प्रगति प्रकाशन मेरठ. 2. पर्यावरण तथा प्रदूषण, रघुवंशी अरूण एवं चन्द्रलेखा, हिन्दी ग्रन्थ एकादमी, भोपाल. 3. पर्यावरण प्रदूषण, पशुपति नाथ एवं सिद्धनाथ, चुघ पब्लिकेशन, इलाहाबाद. 4. मानव पर्यावरण की सामाजिक समस्याएं, प्रसाद गुरू, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ.*

लेखक संपर्क : 26, कावेरी एन्क्लेव, फेज-2,
निकट स्वर्ण जयन्ती नगर,
रामघाट रोड़, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश

होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता-2014 में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त लेख

फफूंद से ही बनता है - जैव-विष

- डॉ.नवीन कुमार बोहरा

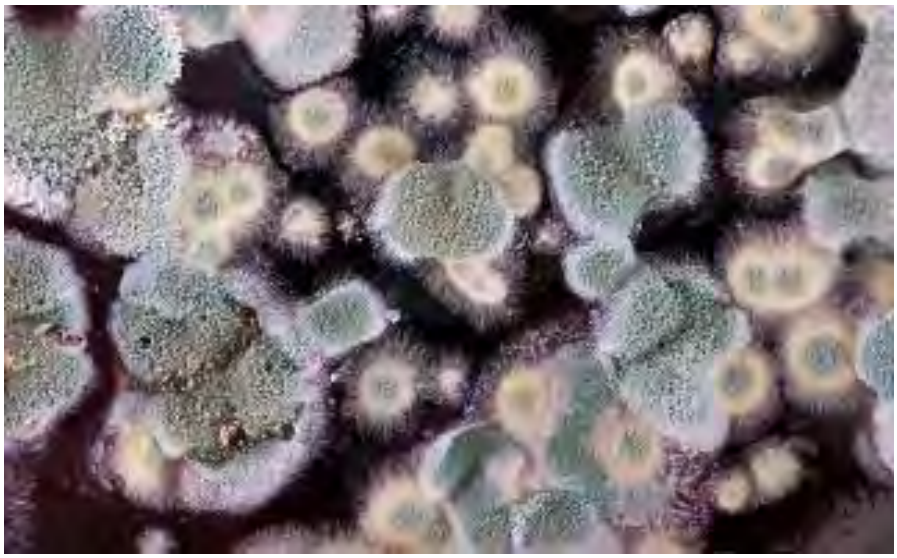

आज एक ओर फंफूद की उपयोगिता एवं विशेषता को बढ़ा चढ़ाकर प्रचारित, प्रसारित किया जा रहा है, वहीं दूसरी और इनसे होने वाले तमाम खतरनाक दुष्प्रभावों एवं जानलेवा रोगों के बारे में भी जानकारी होना जरुरी है. फंफूद से दूषित खाद्य पदार्थ स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा पैदा कर रहे है. इससे बनने वाले टॉक्सिन अर्थात जैव विष अनेक रोगों को पैदा करने में सक्षम होते हैं. इनकी क्षमता अत्यधिक होने के कारण इसे आधुनिक युग में शक्तिशाली जैव हथियारों के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता हैं. विभिन्न कवक प्रजातियों द्वारा उत्पन्न होने वाला माइकोटॉक्सिन नामक विषैला पदार्थ पशुओं एवं मनुष्यों में कई भयानक एवं संक्रामक बीमारियां उत्पन्न कर सकता है. ये माइकोटॉक्सिन पादप बीजों में अंकुरण को रोककर पौधों की वृद्धि दर को भी प्रभावित करते हैं. पर्याप्त आर्द्रता एवं मध्यम तापमान की परिस्थितियों में फंफूद का विकास तेज गति से होता है. इसी कारण वर्षा ऋतु में डबलरोटी एवं अन्य खाद्य पदार्थों पर फंफूद जल्दी लगती है. भारत में खाद्यान्नों एवं तिलहनों पर कुछ इसी प्रकार का फंफूद संक्रमण पाया जाता है. ये फंफूद इन पर अगर जैव विष पैदा करती है. माइकोटॉक्सिस उत्पन्न है - एरापरजिलस फ्लेवस, एरापरजिलस बरसीकोलर, एसपरजिलस फ्यूमिगेटरा, फ्यूजेरियम सोलेनाई व ग्रेमीनीएरम पोनिसोलियम सिट्रिनम आदि. इनके बीच वायु में मुक्त रुप से बिखरे रहते है तथा अनुकूल परिस्थितियां होते ही ये अंकुरित होकर खाद्य पदार्थों पर लग जाते हैं. इन पदार्थों पर ये कवक धीरे-धीरे विकास करते हुए विभिन्न जैविक क्रियाओं द्वारा जहरीले पदार्थों पर लग जाते हैं. इन पदार्थों पर ये कवक धीरे-धीरे विकास करते हुए विभिन्न जैविक क्रियाओं द्वारा जहरीले पदार्थ (माइकोटॉक्सिन्स) उत्पन्न करते हैं. जब कोई पशु या मनुष्य इन दूषित पदार्थों को खाता है तो लीवर, किड़नी तथा अन्य कई अंगों में भयानक बीमारिया हो जाती हैं. विशेष परिस्थितियों में मृत्यु भी हो सकती है. इन बीमारियों को 'माइकोटोक्सिकोसिस' कहा जाता है.

इतिहास : सर्वप्रथम वर्ष 1930 में सोवियत संघ के लोगों ने मनुष्य में फंफूद विषाक्तता की जानकारी प्राप्त की

थी. उन्होंने फंफूद ग्रस्त खाद्य से होने वाले चार रोगों का पता लगाया. इसके तुरंत बाद जापान में धान की पीली फंफूद में जैव विष होने की खबर मिली. शोध द्वारा कुछ खास प्रकार के जैव विषों जैसे साइकोसिन और सेनिसियां एल्केलाइड़ो की खाद्यों में उपस्थिति और उनके जिगर के रोगों के बीच सीधा संबंध पाया गया.

1960 में जब ब्रिटेन में 'टर्की एक्स रोग' से लाखों टर्की मर गए. इसके बाद इस भयंकर बीमारी ने केन्या, युंगाडा एवं कई अन्य देशों को अपनी चपेट में ले लिया. वैज्ञानिक अध्ययनों से इसका कारण फंफूद संक्रमिक खाद्य होने का पता चला. इसमें मुख्यतः 'एसपरजिलस फलैक्स' नामक फंफूद प्रजाति का पता चला जो 'एफलाटोक्तिस' नामक कवक विष उत्पन्न करता है. इसी से विज्ञान की एक नई शाखा 'माइकोटॉक्सिकोसिस' का उदय हुआ. फंफूद से होने वाले रोगों का पता 430 बी.सी. में मिश्र में 1951 में, फ्रांस में 1979 में, अफ्रिका में तथा भारत में 1976 में चला.

अर्गट विषाक्तता : बाजरे पर अर्गट संदूषण एक प्रमुख समस्या है. राई, सोरघम और गेहूं के पौधे फूल आने के समय से 'क्लेवीसेप्स परपुरिया' नामक फफूंद के अरगट से दूषित हो जाते हैं. फफूंद से बनने वाली काली लम्बी कायाए अर्गट कहलाती है. संदूषित खाद्यान्नों के सेवन से मनुष्य एवं पशु दोनों में ही 'अरगेटिज्म' पैदा हो जाता है. इसके होने से बेहोशी, उल्टी आना, सुस्ती, डायरिया हाथ-पैरों में ऐंठन-जकडन, अंगुलियों में गैगीरन, डिप्रेशन आदि लक्षण प्रकट होते है. अमेरिका में 1975 में सोवियत रुस में 1726-27 में व इग्लैण्ड में 1928 में अर्गटता होने की जानकारी है. भारत में महाराष्ट्र, गुजरात व राजस्थान में बाजरा के उपयोग से जहर आंत्रीय परेशानियां देखी गई है.

अर्गट की जैव विषाक्तता इसके रोगाणुओं का जीवन लम्बा होने के कारण गंभीरतम होती है. यह भूमि से पैदा होता है तथा अनेक माध्यम इसे पोषण उपलब्ध कराते है. इसके नियंत्रण हेतु सर्वाधिक प्रभावी रसायनों की भी कमी है. अर्गट ग्रसित राई, गेहूं या बाजरा से निकाले गए एल्केलॉइड खाने से मुर्गियों में कुछ ही समय में उदासीनता, सांस फूलना, पंख गिरना, टांगों की गंभीर कमजोरी, उल्टी होना जैसे लक्षण पैदा हो जाते है. अर्गट बाजरा, राई और गेहूं के प्रति 100 ग्राम पदार्थ में क्रमशः 32 मि.ग्रा., 70 मि.ग्रा. और 92 मि.ग्रा. एल्केलोइड की सुरक्षित सीमा 100 ग्राम में 0.5 मि.ग्रा. मानी गई है.

महाराष्ट्र में अर्गटी अन्न को अलग करने के लिए बाजरे को 20 प्रतिशत सामान्य नमक के घोल में डुबाया जाता है परंतु इससे सभी प्रभावित दाने अलग नहीं होते हैं.

प्रायः जैव विष या माइकोटॅक्सिन सभी खाद्य पदार्थों में मौजूद रहते हैं किन्तु इनकी मात्रा नगण्य से लेकर हानिकारक स्थिति तक हो सकती है. खाद्यों के जैव विषों में ऐफलाटॉक्सिन वर्ग के तेज विष है. इसमें ऐफलाटॉक्सिन बी$_1$ व जी$_1$ पशुओं के लिए अत्यधिक विषैले हैं. जैव विष प्रायः खाद्य वस्तुओं विशेषकर मूंगफली, बिनौला, चावल, गेंहू, मक्का, ज्वार, कसावा, शकरकंद आदि पर हो सकता है. ये पौधों के बीजों का अंकुरण कम करते हैं, कार्बोहाइड्रेट्स व प्रोटीन की मात्रा को घटाते है एवं राइबोन्यूक्लिक अम्ल तथा डी-ऑक्सी राइबोन्यूक्लिक अम्ल संश्लेषण भी कम हो जाता है. जैव विष क्रोमोसोम्स की संख्या अनियंत्रित कर अनेक विकृतियां पैदा कर देते हैं.

विभिन्न प्रकार के जैव विष और प्रभाव : ऐफलाटॉक्सिन कवक विष से जिगर में घातक कैंसर हो जाता है और इसकी अधिक मात्रा से कोशिकाओं की मौत हो जाती है. जैव विष लाल रक्त कणिकाओं को भी बदल देते हैं. दक्षिण पूर्व एशिया, जापान एवं दक्षिण भारत में ऐफलाटॉक्सिन से जिगर कैंसर की कई घटनाएं हुई है. बिनौला में ऐफलाटॉक्सिन व गॉसीपोल दोनों हानिकारक होते हैं.

इनके अतिरिक्त जैव विष स्टेरिंगामेटोसिस्टिन जो 'एसपराजिलस वर्सीकल्चर' द्वारा उत्पन्न होता है. लूटेसकिरीन व साइक्लोक्लोरोटीन पेनिसिलियम इसलैडिकम से एवं रुगूलोरीन, पेनिसीलियम रुगूलोसम से उत्पादित होता है. ये जैव विषआंतों में कैंसर पैदा करते हैं और फफूंदग्रस्त मॉल्ट और संदूषित मक्का में पाये जाते है. पेनिसीलियम ग्रिसोफलैविन से पैदा होने वाला ग्रिसोफलेविन पैदा होता है जो प्रभावकारी एन्टीबायोटिक है परंतु यह जिगर विषाक्तता व कैंसर पैदा करते हैं. ट्राइकोथिसेन्स, फ्यूजेरियम द्वारा पैदा होते है परंतु अकसरकारी वर्ग के जैव विष है.

आज दुनिया भर के लोग जैव विष की समस्या से निजात पाने हेतु प्रयासरत हैं. वास्तव में इन जैव विषों की संदूता उन परिस्थितियों पर निर्भर करती है जो इन्हें पैदा करने वाले फफूंद को बढ़ावा देने के लिए अनुकूल होती है. यदि इन कवक विषों की मात्रा लगातार शरीर में पहुंचती रहे तो आदमी की मृत्यु हो सकती है. ये कवक विष एक बार बन जाने पर उबालने पर भी नष्ट नहीं होते तथा एक पीढ़ी तक भी आनुवंशिक रुप से जा सकते है. इससे बचाव ही इससे सुरक्षा है.

लेखक संपर्क : प्लाट नं.389, गली नं.10, मिल्कमेन कोलोनी, पॉल रोड, जोधपुर, राजस्थान

होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता-2014 में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त लेख

मेथी स्पर्श से रोग निदान

- डॉ.चंचलमल चोरडिया

दाना मेथी हमारे रसोइघरों में दैनिक उपयोग में आने वाली वस्तु है, जो अनेक औषधीय गुणों से भरपूर होती है. प्राचीन काल से ही इसका प्रयोग खाद्य और औषधि के रूप में हमारे घरों में होता आ रहा है. आयुर्वेद के ग्रन्थ भावप्रकाश में कहा गया है कि मेथी वात को शान्त करती है, कफ और ज्वर का नाश करती है. राज निघन्टु में मेथी को पित्त नाशक, भूख बढ़ाने वाली, रक्त शोधक, कफ और वात का शमन करने वाली बतलाया गया है. मेथी में प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेटस, खनिज, विटामिन, केल्शियम, फासफोरस, लोह तत्त्व, केरोटीन, थायमिन, रिवाफलेबिन, विटामिन सी आदि प्रचुर मात्रा में होते हैं. लोह तत्त्व की अधिकता के कारण मेथी रक्त की कमी वालों के लिए विशेष लाभप्रद होती है. मेथी दानों से शरीर की आन्तरिक सफाई होती है. मेथी का उबला पानी बुखार को कम करने में बहुत ही लाभप्रद होता है.

मेथी सेवन से पाचन तंत्र सुधरता है. पेट में कर्मियों की उत्पत्ति नहीं होती. आंतों में भोजन का पाचन बराबर होता है. बड़ी आंत में, मल में कुछ गाढ़ापन आता है और मल आसानी से बड़ी आंत में गमन करने लगता है. मेथी खाने से भूख अच्छी लगती है. मेथी सेवन से गंध और स्वाद इंद्रियां अधिक संवेदनशील होती हैं. यह शरीर का आंतरिक शोधन करती है. शलेष्मा को घोलती है तथा पेट और आंतों की सूजन ठीक करने में सहायक होती है. मेथी सेवन से मुंह की दुर्गंध दूर होती है. कफ, खांसी, इनफ्लूएंजा, निमोनिया, दमा आदि श्वसन संबंधी रोगों में लाभ होता है. गले की खराश में मेथी दाने के पानी से गरारे करने से बहुत लाभ होता है.

मेथी सेवन की विभिन्न विधियां - अलग-अलग रोगों के उपचार हेतु मेथी का प्रयोग अनेक प्रकार से किया जाता है. जैसे-मेथी दाना भिगोंकर उसका पानी पीना, उसे अंकुरित कर खाना, उबालकर उसका पानी पीना, सब्जी बनाकर खाना, विभिन्न अचारों, सब्जियों अथवा अन्य खाद्य पदार्थों के साथ पकाकर सेवन करना, मेथी दानों को चूसना, चबाना अथवा पानी के साथ निगलना, मेथी की चाय अथवा काढ़ा

बनाकर पीना, उसका पाउडर बना पानी के साथ लेना, अथवा लेप करना, मेथी की पुड़िए बनाकर खाना अथवा पकवान बनाकर उपयोग करना इत्यादि, कई तरीकों से मेथी का प्रयोग हमारे घरों में होता रहता है.

स्वयं करें मेथी स्पन्दन का अनुभव - कागज की चिपकाने वाली टेप पर मेथी दाना को चिपकाकर हथेली के अंगूठें के नाखून वाले ऊपरी पोरवे में उस टेप को लगा दें जिससे अंगूठे को मेथी का स्पर्श होता रहे. कुछ ही क्षणों में हमें उस स्थान पर स्पंदन की अनुभूति होनी प्रारंभ हो जाती है. इससे प्रमाणित होता है कि मेथी का उसके गुणों के अनुरूप बाह्य उपयोग भी लाभप्रद हो सकता है.

मेथी स्पर्श चिकित्सा का सिद्धान्त - शरीर में अधिकांश दर्द और अंगों की कमजोरी का कारण आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार प्रायः वात और कफ संबंधी विकार होते है. मेथी वात और कफ का शमन करती है. अतः जिस स्थान पर मेथी स्पर्श किया जाता है, वहां वात और कफ विरोधी कोशिकाओं का सृजन होने लगता हैं, शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ने लगती है. दर्द वाले अथवा कमजोर भाग में विजातीय तत्त्वों की अधिकता के कारण शरीर के उस भाग का आभा मंडल विकृत हो जाता है. मेथी अपने गुणों वाली तरंगें शरीर के उस भाग के माध्यम से अंदर में भेजती है. जिसके कारण शरीर में उपस्थित विजातीय तत्त्व अपना स्थान छोड़ने लगते हैं, प्राण ऊर्जा का प्रवाह संतुलित होने लगता है. फलतः रोगी स्वस्थ होने लगता है.

मेथी रक्त शोधक है, रोगग्रस्त भाग का रक्त प्रायः पूर्ण शुद्ध नहीं होता. जिस प्रकार सोडा कपड़े की गंदगी अलग कर देता है, मेथी की तरंगे रोग ग्रस्त अथवा कमजोर

भाग में शुद्ध रक़्त का संचार करने में सहयोग करती है जिससे उपचार अत्यधिक प्रभावशाली हो जाता है.

मेथी का स्पर्श क्यों प्रभावशाली? - मेथी के प्रत्येक दानें में हजारों दाने उत्पन्न करने की क्षमता होती है. अतः उसके सम्पर्क से मृत प्रायः कोशिकाएं पुनः सक्रिय होने लगती है. मेथी के औषधीय गुणों की तरंगे कमजोर अंगों को शक्तिशाली बनाने, शरीर के दर्द वाले भाग की वेदना कम करने, जलन वाले भाग की जलन दूर करने में चमत्कारी प्रभावों वाली सिद्ध हो रही है.

मेथी जो कार्य पेट में जाकर करती है, उससे अधिक एवं शीघ्र लाभ उसके बाह्य प्रयोग से संभव होता है, क्योंकि उससे रोगग्रस्त भाग का मेथी की तरंगों से सीधा संपर्क होता है. किसी भी प्रकार के दुष्प्रभाव की संभावना प्रायः नहीं रहती. रोगग्रस्त भाग को मेथी के औषधीय गुणों का पूर्ण लाभ मिलता है जबकि मेथी सेवन से रोगग्रस्त भाग तक उसका आशिंक लाभ ही मिलता है. परिणाम स्वरूप मेथी का बाह्य स्पर्श विभिन्न असाध्य स्थानीय रोगों का सहज, सरल, स्वावलंबी प्रभावशाली उपचार के रूप में विकसित हो रहा है. अनेकों रोगों के उपचार में यांत्रिक एवं रसायनिक परीक्षणों एवं अनुभवी चिकित्सकों के परामर्श की भी आवश्यकता नहीं रहती. मात्र रोगग्रस्त भाग अथवा कमजोर अंग का मेथी से स्पर्श रखना पड़ता है.

मेथी स्पर्श द्वारा विविध उपचार - मेथी दानों को शरीर के दर्दवाले भाग पर लगाने से दर्द में तुरंत राहत मिलती है. शरीर के कमजोर अंग पर लगाने से वह अंग पुनः सक्रिय और ताकतवर होने लगता है. जलन, सूजन, दाद, खुजलीवाले स्थान पर मेथी लगाने से तुरंत लाभ मिलता है. मेथी दानों को चूसते रहने से दांतों का दर्द ठीक होता है और गले संबंधित रोगों में आराम मिलता है. अन्तःस्रावी ग्रंथियों एवं ऊर्जा चक्रों पर मेथी दाना लगाने से उसके आसपास जमे विकार दूर होने से उनकी सक्रियता बढ़ जाती है. हथेली और पगथली में मेथी दानों के मसाज से शरीर शरीर से संबंधित एक्यूप्रेशर प्रतिवेदन बिंदू सक्रिय होने लगता हैं. एक्यूप्रेशर के दर्दस्थ प्रतिवेदन बिन्दुओं पर मेथी स्पर्श से वहां जमें विजातीय तत्त्व दूर होने लगते हैं और एक्यूप्रेशर चिकित्सा बिना दर्द वाली स्वावलंबी प्रभावशाली उपचार पद्धति से हो जाता है.

1. अंगूठे के ऊपर वाले पोरवे पर मेथी लगाने से चक्कर एवं सिर दर्द संबंधी विभिन्न रोगों में तुरंत आराम मिलता हैं. रक्तचाप बराबर होने लगता है. तनाव, भय, अधीरता, क्रोध कम होने लगता है.

2. रात्रि में सोते समय हाथ के अंगूठों के पहले पोरवे पर मेथी लगाने से अनिद्रा के रोग से छुटकारा मिलता है.

3. मेथी का हल्का सा मसाज सीने पर करने से फेंफड़े मजबूत होते हैं. कफ, खांसी, दमा में आराम मिलता है.

4. हृदय रोगियों के हृदय वाले स्थान पर मेथी दाना लगाने से हृदय शूल और हृदय संबंधी अन्य विकार शीघ्र दूर होने लगते हैं.

5. स्पलीन पर मेथी स्पर्श करने से मधुमेह ठीक होता है. शरीर में लासिका तंत्र बराबर कार्य करने लगता हैं. जिससे सूजन नहीं आती. आमाशय पर लगाने से पाचन अच्छा होता है. लीवर, पित्ताशय, गुर्दों, आंतों पर मेथी लगाने से संबंधित अंगों से विजातीय तत्व दूर होने लगते हैं और वे सारे अंग अपनी क्षमतानुसार कार्य करने लगते हैं.

शरीर के जिस स्थान पर बाल हो और टेप से मेथी दानों का स्पर्श संभव न हों वहां मेथी का लेप कर उपचार किया जा सकता है. आग से जलने पर दानेदार मेथी को पानी में पीसकर लेप करने से जलन दूर होती है, फफोले नहीं पड़ते. मेथी का सिर पर लेप करने से बाल नहीं गिरते तथा गंजों के बाल आने लगते हैं. बाल अपने प्राकृतिक रंग में मुलायम बने रहते हैं. बालों की लंबाई बढ़ती है. ताजा पत्तियों का पेस्ट रोज नहाने से पूर्व चेहरे पर लेप करने से चेहरे का रुखापन, झुरियां, गर्मी से होनेवाले फोड़े फुन्सियां आदि ठीक होते हैं.

पगथली के अंगूठों और अंगुलियों में मेथी लगाने से नाड़ी संस्थान संबंधी रोगों में शीघ्र राहत मिलती है.

मेथी कैसे और कितनी देर लगायें - बाजार में अलग-अलग माप की चिपकाने वाली कागज की टेप मिलती है. आवश्यकतानुसार माप की टेप पर मेथीदाना को चिपका दें. चारों तरफ थोड़ा स्थान खाली छोड़ दें ताकि टेप त्वचा पर आसानी से चिपक सकें. मेथी दानों का स्पर्श तब तक शरीर पर रहने दें, जब तक उस स्थान पर किसी प्रकार की प्रतिकूलता अथवा सिर में भारीपन अनुभव न हो. मेथी अपना प्रभाव लगाने के तुरंत बाद अनुभव कराने लग जाती है. मात्र तीन दिन के नियमित प्रयोग से उसके चमत्कारी प्रभावों का अनुभव होना प्रारंभ होने लगता है.

उपसंहार - सारांश यही है कि मेथी स्पर्श चिकित्सा सहज, सरल, सस्ती, प्रभावशाली, दुष्प्रभावों से रहित, वैज्ञानिक, पूर्ण स्वावलंबी एवं अहिंसक होती है, जिसका शरीर के रोगग्रस्त भाग पर शीघ्र प्रभाव पड़ता है. मेथी दर्द नाशक एवं रक्तशोधक होती है. विजातीय तत्त्वों को दूर कर शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाती है. जिससे निष्क्रिय अंग सक्रिय एवं रोगग्रस्त भाग रोग मुक्त होने लगते हैं. अतः भविष्य में दवाओं के बढ़ते दुष्प्रभावों का प्रभावशाली विकल्प मेथी स्पर्श चिकित्सा के समान दवाओं के शरीर पर स्पर्श में हो तो आश्चर्य नहीं?

लेखक संपर्क : चोरडिया भवन, जालोरी गेट के बाहर,
जोधपुर-342003 (राजस्थान)

वैज्ञानिक खोज, कुछ रोचक पहलू

एडीसन और उनके असफल आविष्कार

-मनीष श्रीवास्तव

विज्ञान जगत के शीर्षस्थ आविष्कारों में शुमार थॉमस अल्वा एडीसन अदभुत प्रतिभा के धनी थे. वे ऐसे जिज्ञासु व्यक्ति थे जो जीवनपर्यंत मानव जगत की भलाई के लिए आविष्कार करते रहे. यूनाईटेड स्टेट में रहते हुए लगभग 1093 पेटेंट, अन्य देशों में 1200 पेटेंट तथा 2500 से अधिक आविष्कारों की सूची थॉमस अल्वा एडीसन के नाम पर दर्ज हैं. किन्तु इतने सारे पेटेंट प्राप्त करने के बाद भी एडीसन के कई ऐसे आविष्कार हैं जो मानव की भलाई में काम न आ सके. कई ने तो उन्हें वित्तीय रूप से भारी नुकसान भी पहुंचाया. तो कई प्रयोगों में आमजन ने कोई रूचि नहीं दिखाई. इस तरह हम कह सकते हैं कि वे आविष्कार असफल साबित हुए. उनके कुछ ऐसे ही चुनिंदा आविष्कारों की चर्चा हम यहां कर रहे हैं.

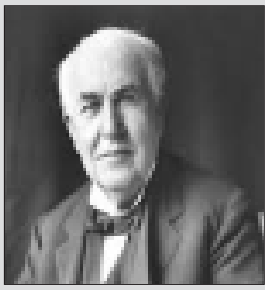

इलेक्ट्रोग्राफिक वोट रिकार्डर

एडीसन की उम्र मात्र 22 वर्ष थी जब उन्होंने अपना पहला पेटेंट प्राप्त किया था. अपने इस आविष्कार को उन्होंने नाम दिया था 'इलेक्ट्रोग्राफिक वोट रिकार्डर'. उस समय एडीसन के कई समकालीन इस तरह का उपकरण बनाने का प्रयास कर रहे थे, लेकिन एडीसन इसमें पहले सफल हुए. इस उपकरण को बनाने का उद्देश्य संवैधानिक संस्थाओं द्वारा करायी जानेवाली वोटिंग को अधिक व्यवस्थित बनाना, उसमें अधिक पारदर्शिता लाना तथा वोटिंग में लगने वआले समय को कम करना था. इस वोट रिकार्डर में वोटिंग डिवाइस क्लर्क की मेज से संबद्ध रहता था. इस मेज में एक धातु का बना डिवाइस संस्थापित था, जिसमें प्रत्याशी का नाम 'हां' या 'न' विकल्पों के साथ पहले से ही सुरक्षित कर दिया जाता था. इस डिवाइस को स्विच के माध्यम से नियंत्रित किया जा सकता था. एडीसन के अनुसार वोटिंग का यह बहुत ही सरल एवं कम समय लेने वाला तरीका था. किंतु यूनाइटेड स्टेट ऑफ कांग्रेस के सदस्यों को इस तरह के उपकरण पर अधिक विश्वास न था. उन्हें लगता था कि इस तरह के उपकरण से वोटिंग में हेरा-फेरी की संभावना होगी. अतः कांग्रेस ने एडीसन के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया और एडीसन द्वारा ईजाद किए गए इस यंत्र को कभी उपयोग

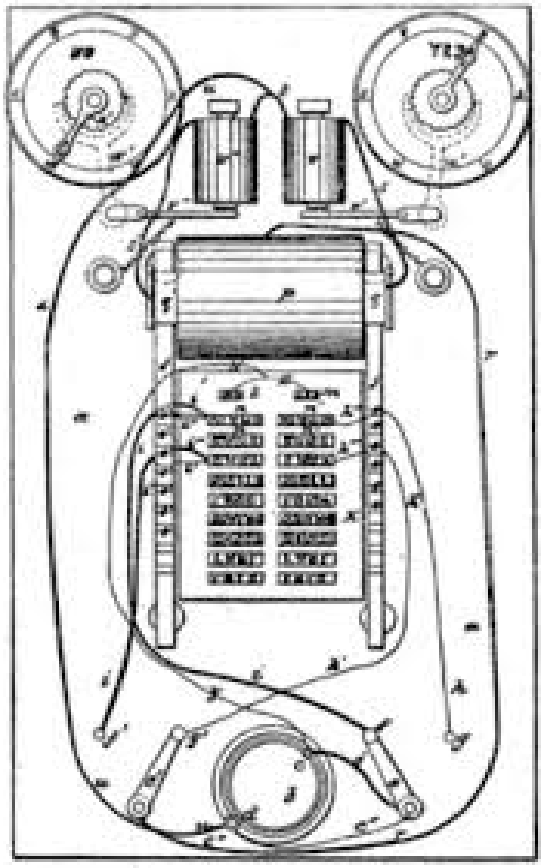

में नहीं लाया जा सका.

चुम्बकीय धातु पृथकीकरण यंत्र

शायद यह एडीसन के जीवन का वित्तीय रूप से सबसे अधिक नुकसान पहुंचाने वाला यंत्र था. इसे एडीसन ने बेकार पड़ी खदानों में से उपयोगी लौह अयस्क को चुंबक की सहायता से अलग करने के लिए तैयार किया था. इसके आविष्कार में उन्हें लगभग एक दशक का समय लगा. उन्होंने 1880 से 1890 के दौरान इसे बनाने का कार्य किया. इसके

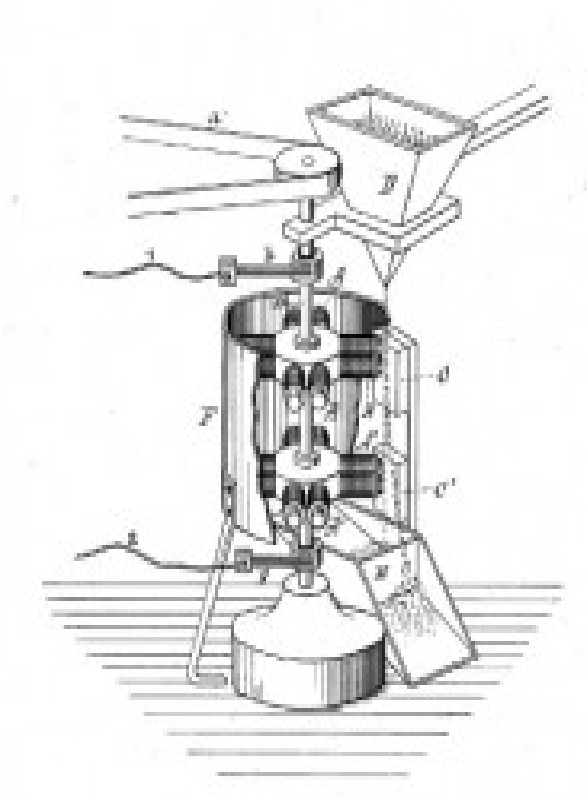

माध्यम से अनुपयोगी खदानें पुनः उपयोगी होकर लाभ का जरिया बनने वाली थीं. इस समय लौह अयस्क के दामों में अभूतपूर्व वृद्धि देखी गई थी. अपने आविष्कार को आजमाने के लिए एडीसन ने न्यूजर्सी की आगडेन नाम की जगह पर स्थित 145 खदानों में कार्य शुरू किया. उन्हें इस परियोजना के लिए नजर इलेक्ट्रिक कंपनी को मोटी रकम चुकानी पड़ती थी. जी ई कंपनी की स्थापना 1892 में एडीसन ने की थी. परंतु इसके बावजूद इस परियोजना में हमेशा कोई न कोई तकनीकी समस्या बनी रही. लंबे समय तक यही समस्या बने रहने के कारण लौह अयस्क के दामों में भारी गिरावट आ गई और एस बार पुनः एडीसन के बनाए संयत्र का प्रयोग कभी नहीं हो पाया.

विद्युत शक्ति मापन यंत्र

1881 में एडिसन ने एक 'वेबमीटर' नामक यंत्र का पेटेंट करवाया था जिसका प्रयोग आपूर्ति की जाने वाली बिजली की रीडिंग मापने में होना था. इस 'वेबमीटर' में दो या चार इलेक्ट्रॉडों पर जिंक तथा जिंक सल्फेट मिश्रण का उपयोग किया गया था. इसमें जिंक एक इलेक्ट्रॉड से दूसरे इलेक्ट्रॉड पर प्रतिस्थापित होकर उपयोग की गई बिजली को प्रदर्शित करता था. प्रत्येक नई रीडिंग के साथ पुरानी रीडिंग स्वंय विलोपित हो जाती थीं.

निर्वात ग्लास

बल्ब के लिए किये जा रहे प्रयोग के दौरान एडीसन से एक ग्लास वैक्यूम ट्यूब का आविष्कार हो गया. एडीसन के अतिरिक्त और भी कई आविष्कारक इस तरह के प्रयोग कर रहे थे, लेकिन एडीसन ने जैसे ही इसका पेटेंट करवाया उनका नाम सभी की नजर में आ गया. 1881 में एडीसन ने इसका पेटेंट करवाया था. इसमें कांच के एक बर्तन में सब्जियां, फल तथा अन्य पदार्थों को भरकर रख दिया जाता था, जिसे अन्य कांच से ढंककर एक पंप की सहायता से इसके अंदर की सारी हवा को अवशोषित कर लिया जाता था. इस तरह से कांच के अंदर का पदार्थ कई दिनों तक सुरक्षित बना रहता था.

क्षारीय बैटरी

एडीसन हमेशा से ही भविष्य के लिए जिज्ञासु रहते थे. अपने समय में भविष्य की कल्पना करते हुए उन्हें विचार आया कि एक दिन कारें बिजली से चला करेंगी. इस विचार से ही उन्होंने 1899 में ऐसी बैटरी पर काम करना शुरू किया जो बिजली को अपने में समाहित कर कार को ऊर्जा दे सकेगी. प्रारंभ में एडीसन ने इस बैटरी के द्वारा 161 किलोमीटर तक बिना चार्ज किए यात्रा करने के बारे में सोचा था. किन्तु 10 वर्षो तक इस पर कार्य करने के बाद एडीसन को इस परियोजना को समाप्त करना पड़ा. क्योंकि उस समय गैसोलीन ईंधन के रूप में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थी और इसकी अपेक्षा बिजली से कार चलाना काफी महंगा साबित होता.

कांक्रीट के मकान

एडीसन अमेरिकीवासियों के जीवनस्तर को सुधारना चाहते थे. इसके लिए उन्होंने कांक्रीट के घर बनाने का प्रस्ताव भी रखा था. इन घरों में उन्होंने कांक्रीट का प्रयोग करते हुए सारी जरूरी सुविधाए देने का वादा किया था. कांक्रीट के यह घर बाजार कीमतों से बेहद कम सिर्फ 1200

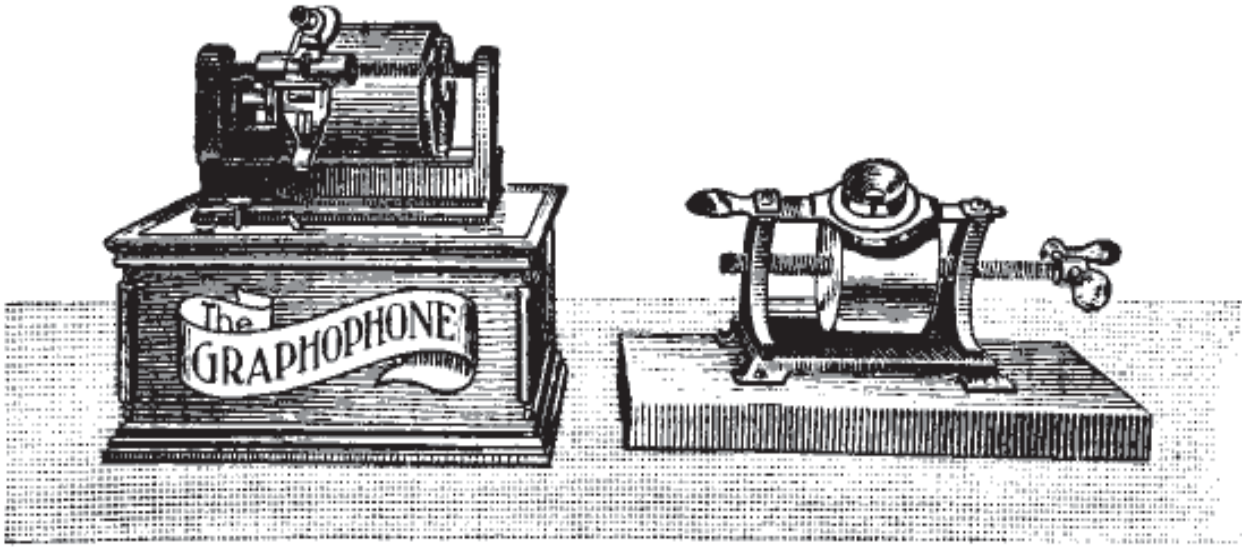

डॉलर में देने की योजना एडीसन द्वारा प्रस्तावित थी. लेकिन उनकी यह योजना भी विफल साबित हुई. उस समय कंस्ट्रक्शन का कार्य बेहद ज्यादा हो रहा था. इस कारण एडीसन को अपनी योजना के लिए पर्याप्त कांक्रीट नहीं मिल पाया. जबकि उस समय उनकी स्वयं की सीमेंट की फैक्ट्री थी. इससे इस योजना की लागत में कई गुना वृद्धि हो गई. दूसरा कारण, क्योंकि यह परियोजना मलिन बस्तियों में रहने वालों के लिए शुरू की गई थी और कोई भी इन घरों में रहकर समाज में स्वयं को छोटे दर्जे का साबित नहीं करना चाहता था. इसलिए परियोजना को लेकर ज्यादा लोगों ने प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की. इसके अतिरिक्त कई लोगों को तो घरों के डिजाइन ही पसंद नहीं आए.

खिलौनों में फोनोग्राफ

जब एडीसन ने फोनोग्राफ का आविष्कार किया था तब वे इसे लघुरूप बनाकर खिलौनों में इस्तेमाल करना चाहते थे, ताकि खिलौनों से विभिन्न तरह की आवाजें निकल सकें. यह विचार उन्हें 1877 में आया था लेकिन इसका पेटेंट 1890 में कराया. इस पर कार्य कर उन्होंने डॉल्स में फोनोग्राफी को संस्थापित कर दिया और बोलने वाली डॉल्स के रूप में इसे प्रचारित कर 10 डॉलर में बेचा. छोटी बच्चियां इसमें गीत तथा अपनी नर्सरी की कविताएं रिकार्ड कर सुना करती थीं. परंतु जल्द ही फोनोग्राप में आवाज को लेकर विसंगतियां नजर आने लगीं. या तो वह ठीक से काम नहीं कर रहा था अथवा इससे बेहद कर्कश ध्वनि सुनाई देने लगी थी. साउंड रिकार्डिंग तकनीक उस समय अपने प्रारंभिक चरण में थी, अतः एडीसन का यह विचार भी अधिक कामयाब नहीं पाया.

आत्माओं से बात करने वाला फोन

1920 में एडीसन ने एक चौंका देने वाली घोषणा की थी कि वे एक ऐसी मशीन पर काम कर रहे हैं, जिसके माध्यम से आत्माओं से संपर्क किया जा सकेगा. उस समय पहला विश्वयुद्ध खत्म हुआ ही था और कई लोग अपने बिछड़ों से बात करना चाहते थे. उन्हें लगता था कि वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह संभव है. लेकिन जब भी एडीसन से पत्रकारों द्वारा पूछा जाता था, तब वे संशय की स्थिति में कहते थे कि उन्हें स्वयं इस बात पर भरोसा नहीं है कि आत्माएं होती भी हैं या नहीं. इसके लिए एडीसन ने ब्रिटिश आविष्कारक सर विलियम क्रूक से संपर्क भी किया था जो दावा करते थे कि उन्होंने कई आत्माओं के फोटो खींचे हैं. इस बात ने ही एडीसन को इस तरह की मशीन बनाने के लिए प्रोत्साहित किय था. अंततः सन 1931 में अपनी मृत्यु तक उन्होंने ऐसी कोई मशीन प्रदर्शित नहीं की.अफवाह रही कि 1941 में एडीसन की आत्मा ने अपने तीन सहयोगियों को इस मशीन पर काम करने के लिए कहा. लेकिन भविष्य में ऐसी कोई मशीन देखने में नहीं आई.

क्या आप जानते हैं?

- एडिसन ने 10 वर्ष की आयु में अपने घर में विज्ञान प्रयोगशाला बनाई.
- एडिसन आंशिक रूप से बहरे थे.

लेखक संपर्क : ए-16, गौतम नगर, भोपाल, मध्यप्रदेश

अवरक्त प्रौद्योगिकी और उनके विविध अनुप्रयोग

- घनश्याम तिवारी

प्रस्तावना : प्रौद्योगिकी ने मानव जीवन के हर पहलू को प्रभावित किया है. आजकल प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग के बिना जीवन संभव नहीं है. वैद्युत चुम्बकीय स्पेक्ट्रम में लाल रंग की तरंगे दंर्ध्य के पश्चात (बढ़ते हुए क्रम में) जो अदृश्य तरंगे आती हैं उन्हें इन्फ्रारेड अथवा अवरक्त किरणें कहा जाता है. प्रत्येक वस्तु जो कि शून्य डिग्री केलविन से अधिक तापमान पर स्थित है, उसमें अणुओं एवं परमाणुओं के कम्पन (Vibration) तथा घूर्णन (रोटेशन Rotation) के कारण ऊर्जा का निरन्तर उत्सर्जन (एमिशन Emission) होता रहता है. यह ऊर्जा आवश्यक विकिरण के रुप में हमारे पास आती है.

अवरक्त प्रोद्योगिकी के सेना में बहुत अनुप्रयोग हैं. इस लेख में इसके चिकित्सकीय तथा नागरी क्षेत्रों में अनुप्रयोग पर प्रकाश डाला जाएगा. आजकल चिकित्सकीय क्षेत्रों में उन प्रणालियों पर जोर दिया जा रहा है जो कि कम क्षति (मिनिमम इन्क्वेसिव Minimum Invasive) है.

परिचय : मनुष्य की सभी ज्ञानेन्द्रियों में दृष्टि का सर्वोत्तम स्थान है. तभी तो दोहा कहा गया है

'कागा चुन चुन खाइयो फिर फिर खाइयो मास.
दो अखियन को छोड़ दे मोहि पिया मिलन की आस.'

यह भी उल्लेखनीय है कि दृष्टि की भी कुछ सीमाएं हैं जैसे कि विद्युत चुम्बकीय स्पेक्ट्रम में आँख केवल दृश्य प्रकाश को ही देख पाती है. न ही आँख किसी आण्विक पदार्थ को वित्त सूक्ष्मदर्शी (माइक्रोस्कोप) की सहायता से देख सकती है. अतः ब्रह्मांड पर विजय प्राप्त करने के लिए मनुष्य को प्रतिबिम्बन प्रौद्योगिकी की परम आवश्यकता है.

विद्युत चुंबकीय वर्णक्रम (स्पेक्ट्रम) में लाल रंग की तरंगे देर्घ्य के पश्चात (बढ़ते हुए क्रम में) जो अदृश्य (इनविजिबल) तरेंगे आती है उन्हें इन्फ्रारेड अथवा अवरक्त किरणें कहा जाता है. प्रत्येक वस्तु जो कि शून्य डिग्री केलविन से अधिक तापमान पर स्थित है. उसमें अणुओं तथा परमाणुओं के कंपन एवं घर्षण की वजह से ऊर्जा का निरंतर उत्सर्जन होता रहता है. यही ऊर्जा अवरक्त विकिरण के रूप में हमारे पास पहुंचती है.

अवरक्त प्रौद्योगिकी (इन्फ्रारेड टेक्नोलॉजी में) अवरक्त किरणों का प्रयोग किया जाता है. इसके सैन्य अनुप्रयोग बहुत हैं तथापि कुछ नागरी तथा चिकित्सकीय अनुप्रयोगों का इस लेख में उल्लेख किया जाएगा.

अवरक्त प्रौद्योगिकी (Infrared technology) : विद्युत चुम्बकीय स्पेक्ट्रम विभिन्न तरंगदैर्घ्यो की समस्त प्रकाश तरंगों की माता है. वैद्युत चुम्बकीय स्पेक्ट्रम में आवृत्ति व तरंगदैर्घ्य का संबंध निम्नलिखित है.

प्रकाश की गति= तरंगदैर्घ्य x आवृत्ति

+ आवृति

अथवा $C=\lambda V$

C प्रकाश की गति (मीटर/सेकेंड) है, λ तरंगदैर्घ्य है जो कि मीटर में हैं एवं V आवृत्ति है जो कि हर्ज (Hertz) में हैं.

सर्वप्रथम सेना में अवरक्त किरणों की पद्धति को प्रथम विश्वयुद्ध (First world war) के समय सुरक्षा के दृष्टिकोण से लघु प्रास (Small range) की संचार व्यवस्था (communication System) के लिए प्रयोग किया गया था. जर्मनी में द्वितीय विश्वयुद्ध के समय अवरक्त प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल टैंक के अग्नि नियंत्रण प्रणाली हेतु किया गया. द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात इस क्षेत्र में संसूचक (Detector) के निर्माण में तेजी से विकास हुआ. प्रारंभ में जेट एअरक्राफ्ट की गर्म सतह को जांचने में इस्तेमाल किया. सन 1980 के अंत में सामान्य तापमान पर वस्तुओं द्वारा उत्सर्जित अवरक्त किरणों के संसूचन में अनुप्रयोग किया गया.

अभिज्ञान शाकुन्तलम में कालिदास ने लिखा है.

'आर्त त्राणाय वा शस्त्रम न प्रहरतुभ अनर्गसि' अर्थात तपस्वी राजा से कहता है कि हे राजन आपके अस्त्र शस्त्र निहत्थों की रक्षा के लिए है न कि उनके ऊपर प्रहार करने के लिए है. अवरक्त प्रौद्योगिकी का सिविलियन तथा चिकित्सकीय क्षेत्रों में अनुप्रयोग कालांतर में बढ़ा.

तापीय प्रतिबिम्बन प्रणाली (Thermal Imaging Systems) : अवरक्त प्रौद्योगिकी के मूल में तापीय प्रतिबिम्बन प्रणाली है. किसी दृश्य बिंब से उत्सर्जित अवरक्त विकिरण को अवरक्त संसूचक के माध्यम से एक वास्तविक काल (Real Time) प्रतिबिम्ब बनाने की प्रणाली को तापीय प्रतिबिम्बन प्रणाली कहते हैं. इस प्रतिबिम्ब को तापीय प्रतिबिम्ब (Thermal Image) कहते हैं क्योंकि यह हमें बिम्ब के पार्श्वदृश्य की तापीय रुपरेखा के बारे में सूचना देता है.

मैवस प्लैंक के नियमानुसार प्रत्येक बिम्ब (Object)

शून्य डिग्री केलविन से अधिक के तापक्रम पर अवरक्त विकिरण उत्सर्जित करता है. इसलिए तापीय प्रतिबिम्बक दृश्य प्रकाश की अनुउपलब्धता पर भी वस्तुओं को देख सकता है. यह क्रिया अवरक्त संसूचक (Infra Red Detaetor) के द्वारा ही संभव है जो कि एक अर्धचालक (Semi conductor) उपकरण है. यह अवरक्त विकिरण की खोज करके उसे विद्युत संकेतों (Electrical Signals) में परिवर्तित कर देता है.

तापीय प्रतिबिम्बन प्रणाली का ब्लॉक निम्नलिखित है :

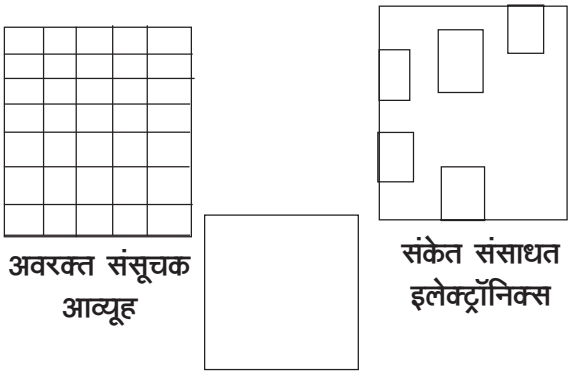

चित्र 2 : एक तापीय प्रतिबिम्बक यंत्र का ब्लॉक

एक तापीय प्रतिबिम्बक प्रणाली में तापीय प्रतिबिम्बक प्रकाशिकी अवरक्त संसूचक व्यूह (IR Detector Array) संकेत संसाधन इलेक्ट्रॉनिक (Signal Proussing Electronics) तथा एक दृश्य प्रदर्श सम्मिलित है. प्रकाशिकी द्वारा अवरक्त विकिरण को एकत्रित कर संसूचक पर फोकस किया जाता है जो कि उसे विद्युत संकेतों में परिवर्तित कर देता है. इन संकेतों को इच्छित दृश्य के तापीय प्रतिबिम्ब को प्राप्त करने हेतु संसाधित किया जाता है. अन्त में इसे किसी उचित डिस्प्ले यंत्र पर प्रदर्शित किया जाता है.

4. अवरक्त विकिरण के श्रोत

हर वस्तु जो कि शून्य डिग्री केलविन तापमान से अधिक पर स्थित है अवरक्त विकिरण का श्रोत है.

अवरक्त विकिरण के प्राकृतिक तथा कृत्रिम श्रोत होते हैं कुछ श्रोत (sources) निम्नलिखित हैं.

(i) सूर्य (Sun) : सूर्य अवरक्त विकिरण (Infrared Rediation) का एक महत्वपूर्ण श्रोत है. प्रयोगशाला की गणनाओं के लिए सूर्य को 5900 डिग्री केलविन (5900^0 k) ब्लैकबॉडी (Black Body) के रूप में माना जाता है.

(ii) समुद्र : समुद्री लक्ष्य जैसे युद्धपोत व पनडुब्बी (submarine) को देखने के लिए बनाये गए तापीय यंत्रों हेतु समुद्र पृष्ठभूमि (Back ground) को देखने के लिए बनाए गए तापीय यंत्रों हेतु समुद्र पृष्ठभूमि (Background) का कार्य करता है. पानी की पारग्मयता शून्य होने के कारण यह भी एक ब्लैक बॉडी की भांति कार्य करता है.

(iii) पौद्ये : लगभग प्रत्येक पौद्या (Plant) तथा मृदा (Soil) ग्रे बॉडी (Gray Body) की तरह कार्य करते हैं इनकी उत्सर्जकता 0.93 या उससे अधिक होती है.

(iv) त्वचा : मानव की त्वचा (Skin) का तापमान 37 डिग्री सेल्शियस अथवा 98.4 डिग्री फॉरेनहाइट माना गया है. इंसान से उत्सर्जित ऊर्जा का लगभग 50 प्रतिशत हिस्सा 5 से 14 माइक्रोन बैंड में आता है. त्वचा का उत्सार्तकता 0.11 है एवं यह त्वचा के रंग पर आधारित नहीं है.

(v) अवरक्त संसूचक (Infra - Red Detector) : जैसा कि चित्र 3 में दिखाया गया है कि अवरक्त संसूचक दो प्रकार के होते हैं. फोटॉन तथा तापीय (Thermal)

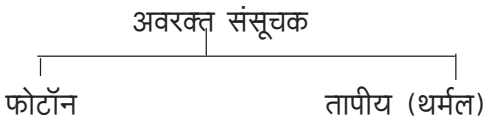

चित्र -3 अवरक्त संसूचकों के प्रकार

फोटॉन अवरक्त संसूचक

अलबर्ट आइंस्टीन द्वारा प्रतिपादित फोटो विद्युत प्रभाव वह नियम है जो कि फोटॉन संसूचकों की कार्यप्रणाली को रेखांकित करता है.

फोटॉन संसूचकों पर आपातित (incidents) फोटॉन सीधे इलेक्ट्रॉन होल युग्म (Electron Hole pair) का जनन करते हैं. अतः ये त्वरित रूप में कार्य करते हैं, किन्तु उन्हें क्रायोजेनिक तापमान (120 डिग्री केलविन से कम) तक शीतलन (cooling) की जाती है. वे फोटॉन जिनकी तरंगदैर्ध्य 1.2 माइक्रोन से कम होती है. फोटोविद्युत उत्सर्जन हेतु जिम्मेवार होते हैं. वे फोटॉन जिनकी तरंगदैर्ध्य (wave-length) 1.2 माइक्रोन से अधिक होती है, समुचित ऊर्जा के अभाव में निम्नलिखित प्रभाव दिखाते हैं.

(क) फोटो कंडक्टिव प्रभाव : आपातित (incident) फोटॉन जब संसूचक की सतह पर अवशोषित होकर अपनी ऊर्जा अणु में स्थानांतरित (transfer) कर देता है. तब इलेक्ट्रॉन उस ऊर्जा को ग्रहण कर नॉन कंडक्टिंग स्थिति से निकलकर कंडक्टिंग स्थिति में पहुंच जाते हैं और यही फोटोकंडक्टिव प्रभाव कहलाता है. संसूचक पदार्थ शुद्ध अर्द्धचालक (intrinsic semiconductor) अथवा अपद्रव्यी अर्द्धचालक (extrinsic semiconductor) हो सकता है.

(ख) फोटोवोल्टैक (Photo voltaic) : प्रभाव अवरक्त संसूचक जब पी-एन जंक्शन प्रकार का होता है तब आपातित फोटॉन (incident Photon) अपनी ऊर्जा को अवशोषित कर

इलेक्ट्रॉन होल युग्म को जन्म देता है और जंक्शन में उपस्थित वैद्युत फील्ड (Electric field) इन्हें अलग कर फोटोवोल्टेज के रूप में मापने के योग्य बना देता है.

(ग) फोटो विद्युतचुम्बकीय प्रभाव : पी-एन जंक्शन में जब आपातित फोटॉन ऊर्जा ग्रहण इलेक्ट्रॉन होल युग्म बन करके पी-एन जंक्शन की गहराई में चले जाते हैं तब वे वैद्युत फील्ड से वे अलग नहीं हो पाते तब विद्युत चुम्बकीय फील्ड की आवश्यकता होती है. इस प्रभाव को फोटोवैद्युत चुम्बकीय प्रभाव कहते हैं.

7 - तापीय संसूचक : आपातित फोटॉन अवरक्त संसूचक से टकराने के उपरान्त अवशोषित हो जाते हैं. वे अपनी ऊर्जा संसूचक के आण्विक संरचना की कंपन ऊर्जा में परिवर्तित कर देते हैं. इस कारण संसूचक के किसी गुणधर्म मसलन चालकता ध्रुवीकरण आदि में बदलाव आता है. इस संसूचक तापीय संसूचक संवर्ग (category) में आते हैं जो कि निम्नलिखित है.

(क) थर्मोकपन संसूचक : जो भिन्न धातुओं को परस्पर जोड़कर एक वैद्युत लूप बनाया जाता है. इसके एक जंक्शन को चपटा रूप दे करके उसे अवरक्त विकिरण अवशोषित करने में सहायक काले रंग से पोत दिया जाता है. दूसरा जंक्शन अवरक्त विकिरणों से शील्ड किया जाता है. इस थर्मोकपल में आपातित अवरक्त विकिरणों के कारण तापांतर से एक विद्युत धारा प्रवाहित होती है जिसे मापा जा सकता है.

(ख) बोलोमीटर संसूचक : वे संसूचक जो कि आपातित विकिरणों के अवशोषण के उपरान्त अपनी प्रतिरोधकता को बदल देते हैं. बोलोमीटर तापीय संसूचक कहलाते हैं.

(ग) पायरोइलेक्ट्रिक संसूचक : इस प्रकार के संसूचकों में ध्रुवित पदार्थ होता है जो कि आपातित विकिरण के कारण तापमान के परिवर्तन से अपना ध्रुवण परिवर्तित कर लेते हैं और इसे मापकर आपातित विकिरण का अनुमान लगाया जा सकता है.

8. क्वांटम वेल अवरक्त फोटो संसूचक : यह एक सुपर लेटीस (Super Lattice) है. क्वांटम वेल अर्द्धचालक पदार्थों के संयोजन से निर्मित कुआं रूपी संरचना है जो कि दो उच्च बैंड गैप पदार्थों के मध्य एक कम बैंड गैप के पदार्थ को सैंडविच किये जाने से बनता है जैसा कि निम्न आलेख में दिखाया गया है :

चित्र 4 में संरचना दिखाई गई है जो एल्यूमिनियम गैलियम आरसेनाइड उच्च बैंडगैप पदार्थ व गैलियम अरसेनाइड कम बैंडगैप पदार्थ के रूप में प्रयुक्त होता है. इन दोनों पदार्थों के ऊर्जा उपरांत में अंतर के कारण से यह क्वांटम वेल बनता है.

चित्र-4 क्वांटम वेल संरचना

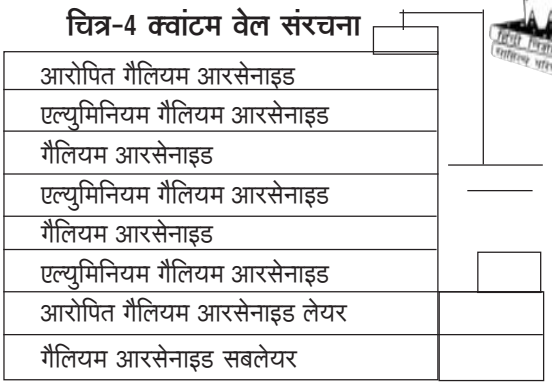

1. अवरक्त प्रौद्योगिकी के चिकित्सकीय अनुप्रयोग

चिकित्सा क्षेत्र में प्रौद्योगिकी ने क्रांति ला दी है :-

(क) बॉडी स्कैन मनुष्य के शरीर को स्कैन करने हेतु उष्म लेखन (थर्मोग्राफी) का प्रयोग किया जाता है. विभिन्न मांसपेशियों के अन्तर्गत तापमान असमयिति (temperature in homegenity) के शोथ (Inflamation) रक्तस्त्राव (हैमरेज) मसल फटने एवं फैक्चर आदि के उपचार में इसका प्रयोग किया जाता है.

2. ट्यूमर एवं कैन्सर की पहचान में : संवहनी स्कैन द्वारा शरीर के विभिन्न ऊतकों की कोशिकाओं में बढ़ोत्तरी का पता लगाया जा सकता है जो कि सुसाध्य व असाध्य ट्यूमर का सूचक (indicator) हैं.

ये पद्धतियां क्षतिविहीन हैं.

10 अवरक्त प्रौद्योगिकी के औद्योगिक अनुप्रयोग

अवरक्त प्रौद्योगिकी के असंख्य औद्योगिक अनुप्रयोग हैं जो कि निम्नलिखित है :

(क) प्रक्रिया मॉनिटरिंग : विभिन्न पदार्थ विभिन्न मात्रा में अवरक्त विकिरण उत्सर्जित करते हैं. अतः इस प्रौद्योगिकी का प्रयोग द्रव स्तर संसूचन द्वारा स्टील उद्योग में स्लैग मॉनिटरिंग तथा फर्नेस रिफ्रेक्टर्स लाइनिंग के चेकिंग में किया जाता है.

(ख) प्रदूषण मॉनिटरिंग : आजकल पर्यावरण पर बहुत जागरुकता है. रासायनिक संयत्रों द्वारा उत्पन्न खतरनाक गैसों आदि को बर्नर द्वारा नष्ट किया जाता है, जिससे निकलने वाली गैस में संदूषक (contiminants) होते हैं. बर्नर के सही प्रकार कार्य न करने से इन खतरनाक पदार्थों के मिलने से स्वास्थ्य संबंधी परेशानियाँ हो सकती है. तापीय कैमरा का प्रयोग इन बर्नर व चिमनियों को मॉनिटर करने व इनके ठीक से कार्य न करने के कारणों का पता लगाने हेतु किया जा सकता है.

(ग) अग्निशमन : तापीय प्रतिबिम्बक धुएं के अंदर भी आसानी से देख सकते हैं. अतः आग लगने पर खोज एवं बचाव कार्य में से बहुत उपयोगी है.

लेखक संपर्क : डी.आर.डी.ओ. मुख्यालय,
राजा जी मार्ग, नई दिल्ली-110011

लेखकों से अनुरोध

- लेखकों से निवेदन है कि विज्ञान संबंधी मौलिक लेख ही भेंजे. रचनाओं का सारगर्भित और स्तरीय होना आवश्यक है.
- इंटरनेट पर प्रसारित रचनाओं को आधार बना कर लेख न भेजें.
- ई मेल से रचनाएं भेजना प्रशंसनीय होगा.
- कृपया लेख हाशिया छोड़ कर, साफ-साफ पठनीय अक्षरों में लिखे. उचित होगा कि रचनाओं को टाइप कर भेजें. प्रतिलिपि ना भेजें.
- रचनाओं के साथ उपयोग में आनेवाली तस्वीरों की मूल प्रति भेजें. प्रतिलिपि न भेजें. इससे प्रकाशन में त्रुटि आती है.
- ये उचित होगा कि लेखक अपनी रचनाएं निम्नलिखित ईमेल और पते पर भेजें.
- यदि किसी लेख से विचार लिये गए है तो उनके संदर्भ का उल्लेख करें.
- लेखक आलेख की मूल प्रति ही भेजें. अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किये जायेंगे.
- डॉ. होमी भाभा लेख प्रतियोगिता में भाग लेने हेतु लेख पर इसका स्पष्ट उल्लेख करें.

: निवेदक :

विपुल सेन

संपादक

वैज्ञानिक अधिकारी, तकनीकी विकास विभाग,

पी.पी.परिसर, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,

ट्राम्बे, मुंबई-400 085

फोन : 022-25591154

Email : vsen@barc.gov.in, vipkavi@gmail.com

मानवता एवं पर्यावरण के लिए घातक जैविक हथियार

- मणि प्रभा

सृष्टि के आरंभ से ही युद्ध मानवता का शत्रु रहा है. समय के साथ साथ स्थितियां तेजी से बदल रही हैं. आज युद्ध केवल युद्ध क्षेत्र तक ही सीमित न रहकर हमारे आसपास आ गया है. किसी भी युद्ध की तीव्रता युद्ध के विस्तार एवं हथियारों के प्रयोग, उनकी नवीनतम किस्मों एवं क्रिया प्रणाली व उनके दुष्प्रभावों पर निर्भर करती है. आज जैविक हथियार पूरे विश्व में आतंक का पर्याय बन चुके हैं.

वर्तमान में विश्व के अति विकसित देशों को आतंकवादी संगठनों के पास विभिन्न प्रकार के जैविक हथियार हैं जिनके प्रयोग से तबाही का अनुमान लगाना कल्पनातीत होगा. जैविक हथियारों से किए जाने वाले जैविक युद्ध से संपूर्ण विश्व चिंतित हैं. जैविक युद्ध का अर्थ है दुश्मन की सेना, आबादी, खाद्यस्त्रोत तथा पशुधन को हानि पहुंचाने या नष्ट कर देने के लिए रोग उत्पादक कारकों का प्रयोग. इन कारकों में कोई जैविक सूक्ष्म जीव या जैव सक्रिय पदार्थ हो सकता है जिसे पारंपारिक प्रेक्षपास्त्र या सिविलियन साधनों से पहुंचाया जा सके. एंटीबायोटिक प्रतिरोधी प्रजातियों का उपयोग करने वाले जैविक हथियारों से आक्रमण किया जा सकता है जिससे एंथ्रेक्स तथा प्लेग जैसे संचरणीय रोगों को फैलने दिया जा सकता है जो स्थानीय महामारी का रूप धारण कर सकते हैं.

वस्तुतः जैविक हथियार बीमारियों के जीवाणुओं का वह विनाशकारी कहर है जो मनुष्य द्वारा चुपचाप मनुष्य तक पहुंचा दिया जाता है. ये हानिकारक जीवाणु पानी, भोजन, मृदा एवं वायु के द्वारा आसानी से लोगों के बीच फैला दिए जाते हैं. इससे मुख्यतः चेचक, प्लेग, वायरस रोग, बाट्यूलिनम और एंथ्रेक्स जैसी घातक एवं जानलेवा बीमारियां फैलायी जा सकती हैं.

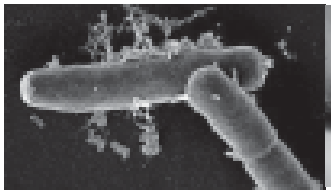

बेसिलस एंथ्रासिस

त्वचा एंथ्रेक्स

जैविक हथियारों के अंतर्गत सूक्ष्म जैविकी या जैविक विष का उपयोग व्यक्तियों, पशुओं या वनस्पतियों में रोग, चोट या मृत्यु करने के उद्देश्य से किया जाता है. ये रोगकारक पदार्थ हैं जो संक्रमित व्यक्तियों में रोग और बीमारी उत्पन्न करते हैं. इच्छित प्रभाव उत्पन्न करने के लिए इनकी छोटी सी मात्रा भी प्रभावी होती हैं जो शरीर की प्रतिरोधक क्षमता पर हावी होकर समय के साथ बलवती होती जाती है, और व्यक्ति को असमर्थ बनाकर प्राणघातक भी साबित हो सकती है. जैविक कारकों का प्रभाव प्रायः इनके संपर्क में आने के कुछ समय बाद दिखाई देना शुरू होता है और इसलिए प्रायः एक बड़ी जनसंख्या में इसके फैलने से पहले इसका पता लगाना कठिन होता है. जैविक कारकों के आरंभिक लक्षण सुस्पष्ट नहीं होते और रासायनिक कारकों या प्राकृतिक संक्रामक बीमारियों के लक्षणों से विभेद करने में कठिन होते हैं. साथ ही इनका प्रभाव लम्बे समय तक वातावरण एवं वनस्पतियों में बना रहता है जिससे इनका आशंकाजनित प्रभाव सैन्य बलों को कई दिनों के लिए अक्षम कर सकता है.

जैविक हथियारों की मारक क्षमता पारंपारिक युद्ध एजेंटों के मुकाबले काफी ज्यादा है. एक ग्राम विषाक्त पदार्थ लाखों लोगों को मार सकता है. जैविक हथियार न केवल पौधों और पशुओं की आनुवांशिक विविधता पर सीधा प्रभाव डालते हैं बल्कि उनकी आबादी पर इनके प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव की आशंका से इन्कार नहीं किया जा सकता. खासकर कई विकसित देशों में कृषि जीनोटाइप विशिष्ट हथियारों की चपेट में आ सकती है.

एन्थ्रेक्स : एन्थ्रेक्स व्यापक क्षति पहुंचाने हेतु आतंकवादियों का पसंदीदा हथियार हैं. यह बीजाण्ड बनाने वाले बैक्टीरिया (बैसिलस एन्थ्रैक्सीया) द्वारा जनित मवेशियों को होने वाला रोग हैं. यह सुअर के मांस जैसे संक्रमित उत्पादों से इंसानों में भी फैल सकता है. त्वचा के जरिए यह घातक नहीं होता लेकिन बीजाण्डों को सांस के साथ अंदर लिए जाने पर 20 से 60 प्रतिशत मामलों में यह घातक हो

सकता है. पीसने पर, सुखाने पर, गाड़ने पर या छिड़काव करने के बाद भी बीजाण्ड जीवनक्षम रहते हैं. इनका जीवन कई दिनों का होता है और ये 159 डिग्री सेल्सियस तक के तापमान को सह सकता है. यह रोग व्यक्ति से व्यक्ति में नहीं फैलता.

'बायोलॉजिकल केमिकल डिफेंस गाइडबुक' के अनुसार उचित परिस्थितियां उपलब्ध होने पर एन्थ्रैक्स नाभिकीय हमलों के बराबर नुकसान कर सकते हैं.

विश्व स्वास्थ्य संगठन का अनुमान है कि 50 लाख आबादी वाले एक शहर पर 50 किलो एन्थ्रैक्स बीजाण्ड के छिड़काव से ढाई लाख लोग बीमार पड़ सकते हैं और अगर उनका उपचार न किया जाए तो इनमें से एक लाख लोग मौत के शिकार हो सकते हैं. एन्थ्रैक्स बीजाण्ड कीटनाशकों के छिड़काव हेतु उपयोग में लाए जानेवाले हवाई जहाजों से छिड़के जा सकते हैं या फिर घर पर बनें एयरोसॉल से एयरोसॉल छोड़ते वक्त अदृश्य होता है और कई किलोमीटर तक हवा में बह सकता है. इंसानी नाक जैसी किसी नर्म-गर्म जगह पर आकर ये बीजाण्ड पुनः सक्रिय हो जाते हैं. ये बेक्टीरिया त्वचा, फेफड़ों या आहार नाल में गहरे जख्म कर देते हैं. इसके शुरूआती लक्षण इफ्लूएंजा जैसे होते हैं लेकिन लगभग दो दिन बाद बहुत गंभीर हो जाते हैं. 90 प्रतिशत से ज्यादा मामलों में 24 घण्टो के भीतर मौत हो जाती है.

एंथ्रैक्स के अलावा बॉट्युलिनम, मर्बर्ग बुखार, इबोला और चेचक के जिनेटिक रूप से परिवर्तित रूप अन्य सम्भावित जैविक हथियार हैं. हमारे देश के वैज्ञानिकों का दावा है कि भारत की राष्ट्रीय प्रयोगशालाएं 48 घण्टों के भीतर ही रोग के जीवाणु पहचान सकती हैं. हालांकि चेचक जरूर मुश्किल

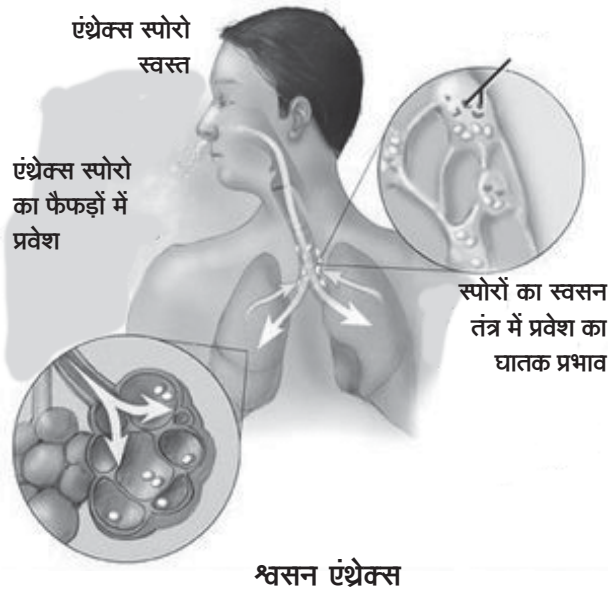

श्वसन एंथ्रेक्स

खड़ी कर सकता है क्योंकि 1980 में इस रोग के उन्मूलन के बाद तमाम देशों ने इसके वैक्सीन के स्टॉक नष्ट कर दिए थे. केवल रूस और अमेरिका के पास ही स्टॉक उपलब्ध है लेकिन अगर इस वायरस की किस्म बदल गई है तो इन टीकों की कारगरता संदिग्ध हो सकती है. चेचक मानव जाति का पुरातन शत्रु हैं. 1958 तक इससे 33 देशों के 20लाख लोग मारे जा चुके थे.

ये वायरस चेचक के शिकार लोगों को छूने और उनके फेफड़ों से निकली बूंदे सूंघने से फैल सकता है. यह वायरस इतनी तेजी से फैलता है कि 4-5 दिनों में ही यह बहुतों को संक्रमित कर देता है. लेकिन इसका यही गुण इसके फैलने में रोड़ा बनता है. क्योंकि इससे लोग इतने कमजोर हो जाते हैं कि वे फिर चल फिर नहीं पाते और रोग आगे नहीं फैल पाता.

चेचक से हमारी लड़ाई में एक और घटक सहायक बना और वह यह कि चेचक के वायरस का इन्सान के अलावा कोई अन्य मेजबान जीव नहीं होता. अर्थात प्रकृति में यह मात्र इन्सानों में ही रह सकता है. आधुनिक समय में वायरस के कमज़ोर रूप से टीका 97 प्रतिशत कारगर पाया गया है. और इसके साइड प्रभाव भी नहीं के बराबर हैं. इसके मरीज़ सूजन के ठीक हो जाने के बाद चेहरे पर बने गड्ढों से आसानी से पहचाने जाते हैं. इस मामले में टीकाकरण मुहिम इतनी सफल रही कि 1977 अक्तूबर में सोमालिया में पाए गए आखिरी मरीज के बाद और कोई मामला सामने नहीं आया है. हालांकि 1998 की यू.एस.गुप्तचर रिपोर्ट के अनुसार हो सकता है कि उत्तरी कोरिया और इराक ने चेचक वैक्सीन के स्टॉक को युद्ध में इस्तेमाल हेतु छुपा रखा हो.

बॉट्यूलिनम - एक अन्य जैविक हथियार बॉट्युलिनम विष, बीजाण्ड बनाने वाले घातक बैक्टीरिया क्लोस्ट्रीडियम बाव्युॅलिनम द्वारा पैदा होता है. बॉट्युलिनम को अगर मुँह से लिया गया तो वो घातक होता है लेकिन सूँघने पर यह कम विषाक्त होता है. यह कार्यकारी तंत्रिकाओं में संवेगों की आवाजाही को अवरूद्ध कर पक्षाघात पैदा कर देता है. यह

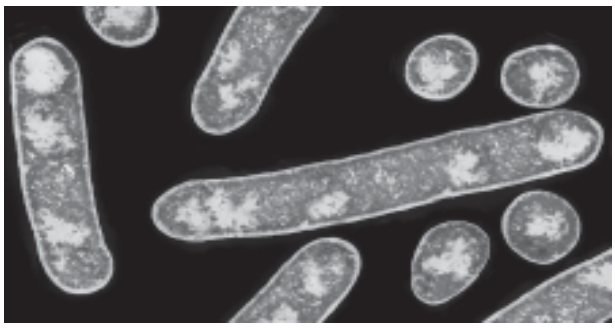

क्लास्ट्रीडियम बॉट्युलिनम

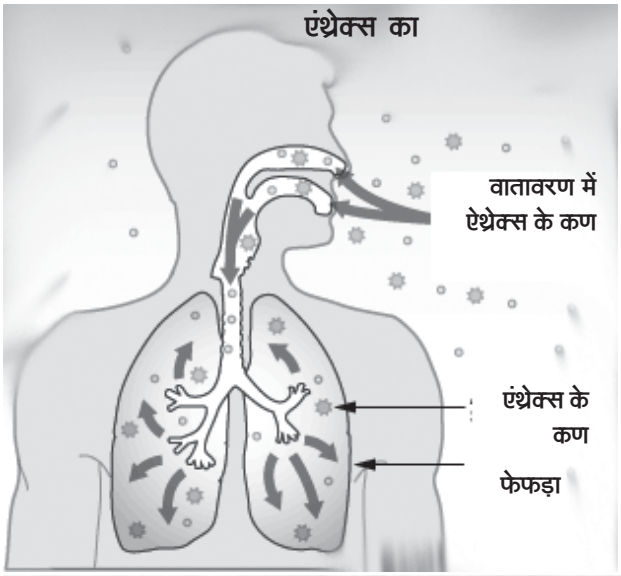

एंथ्रेक्स क़ा हमला

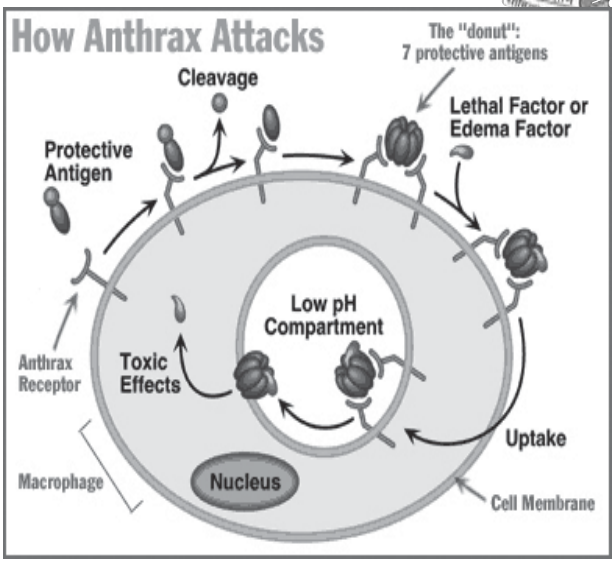

एंथ्रेक्स क़ा इतिहास

अत्यंत घातक है (90 प्रतिशत से भी ज्यादा), उपचार के प्रति प्रतिरोधी है और तत्काल असर दिखाता है. इन वजहों से यह जैव आतंकवादियों की पहली पसंद है.

मर्बर्ग बुखार - पहली बार 1967 में मर्बर्ग जर्मनी में दिखाई दिया. इसके प्रारंभिक लक्षण फ्लू जैसे ही है. इसके बाद पूरे बदन पर चकत्ते हो जाते हैं, फिर गंभीर दस्त होने लगते हैं. बाद के लक्षण हिमोफीलिया से मेल खाते हैं. (हिमोफीलिया एक जेनेटिक रोग है जिनमें रक्त का बहना रूकता नहीं है और रोगी की मौत हो जाती है) दसवें दिन तक रोगी को खून की उल्टियां होने लगती है और कई जगहों से खून बहने लगता है, वृषण की त्वचा निकलने लगती है. इस रोग के लिए कोई वैक्सीन उपलब्ध नहीं है.

इबोला - इबोला का पहला हमला 1976 में जाएर में हुआ था. इसका कारण एक वायरस हैं. इसके 50 से 90 प्रतिशत मरीज जान से हाथ धो बैठते हैं. इसमें बुखार 107 डिग्री फारेनहाइट तक बढ़ जाता है. हर जोड़, हर मांसपेशी में तेज दर्द होने के कारण रोगी किसी भी स्थिति में आराम नहीं पाता है. अधिकांश रोगी कुछ भी निगल नहीं पाते हैं इसलिए खाने का तो सवाल ही नहीं उठता. बाल झड़ने लगते है और याददाश्त कमजोर पड़ने लगती ही. चार दिनों के भीतर रक्तस्त्राव होने लगता हैं. इबोला के मरीजों को रक्त की उल्टियां होती है, मलद्वार से और मसूढ़ों से भी खून निकलता है. इबोला का वायरस अफ्रीकी मूल का माना जाता है.

जैविक हथियारों से होने वाले नुकसानों का सामना करने हेतु टीकाकरण, शीघ्र निदान जैसे तरीके ईजाद किए गए हैं. अमेरिकी प्रतिरक्षा विभाग ने 1960 में तैयार किए गए एक एंथ्रैक्स टीके को हाल ही में अपडेट किया है. लेकिन जब जैविक हथियार कृत्रिम रूप से बनाए जाते हैं तो उनकी जिनेटिक बनावट की सम्भावना बढ़ जाती हैं. इसलिए टीकों की प्रभाव कम होने का अंदेशा रहता है.

जैविक हथियारों के संभावित खतरों से निपटने के लिए बायोइन्फार्मेटिक्स तथा नैनोटेक्नोलॉजी के प्रयोग से समाधान के सूत्र खोजे जा रहे हैं. समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रचार-प्रसार से लोगों को जागरूक करके उन्हे जैविक हथियारों के संभावित खतरों के बारे में आगाह करना भी आवश्यक है तथा इनके दुष्प्रभावों से बचने के लिए प्रशिक्षित करने की भी आवश्यकता हैं. इस दिशा में नीतिनिर्धारकों, जीव वैज्ञानिकों, सैन्य बलों और सूक्ष्म प्रयोगशालाओं में कार्यरत वैज्ञानिकों से सफलता मिल सकती हैं.

लेखक संपर्क : -35/3 जवाहर लाल नेहरू रोड, जार्ज टाउन, इलाहाबाद

प्राकृतिक आपदाएं जो लील गयीं सभ्यतायें

-उत्तम सिंह गहरवार

प्राकृतिक आपदाओं के कारण कई शहर और सभ्यताएं तबाह हो गई. आज भी खुदाई के दौरान उनके अवशेष मिलते रहते हैं. भूकंप से प्राचीन मीनोअन सभ्यता तथा सीदाम और गोमोराह जैसे नगर कुछ ही क्षणों में समाप्त हो गए थे. मेनलोनार्थ कैलीफोर्निया के भूकंप विशेषज्ञ रास स्टीव के अनुसार, भूकंप मैदानी क्षेत्र की अपेक्षा दलदली भूमि में तीव्रता के साथ आता है एवं अत्यधिक क्षति पहुंचाता है. सन् 1989 में कोबे जापान तथा सेन फ्रांसिस्को के मेरीना में आया भूकंप नमी वाली जमीन पर था. इससे अपार धन-जन की हानि हुई थी.

अमेरिका के अन्य भूकंपवेत्ता वेयन थेचर ने एक भूगर्भीय सर्वेक्षण प्रस्तुत किया है. इसके अनुसार दो भीषणतम भूकंपों के बीच की अवधि एक हजार से पांच वर्ष की होती हैं, जबकि इससे कम शक्तिशाली वाला भूकंप शताब्दी के अंदर ही आ जाता है. यह कभी भी, किसी भी समय अपनी तबाही ला सकता है.

गत पांच-छह हजार वर्षों का जो इतिहास प्राप्त हो सका है, उसके अनुसार इसी बीच में मिस्र, बेबीलोनिया, असीरिया, ईरान, यूनान, रोम आदि की भूमंडल में प्रसिद्ध सभ्यताएं पूर्णतया नष्ट हो चुकी हैं.

आइए, जानते हैं ऐसे ही शहरों और सभ्यताओं के बारे में जो प्राकृतिक आपदाओं में नष्ट हो गए...

राजस्थान में सभ्यता के अवशेष : उत्तर पश्चिम राजस्थान में कालीबंगा या उससे पहले भद्रकाली से लेकर सुल्तान पीर, माणक थेड़ी, रंग महल, बड़ोपल, कालीबंगा व पीलीबंगा और उससे आगे तक अनेक ऐसे थेड़ (थेहड़ या माटी के ढेर) हैं, जहां एक प्राचीन सभ्यता के अवशेष मिले. कहते हैं कि ये बस्तियां थीं. पर सवाल उठता है कि यह कैसे हुआ? कैसे एक आबादी अचानक ही मानो रेत की बारिश में दबकर नष्ट हो गई.

वैसे एक जीती-जागती सभ्यता अचानक कैसे लुप्त हो गई इस सवाल के अलग-अलग जवाब हैं. उपलब्ध ऐतिहासिक, पुरातात्विक और वैज्ञानिक प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि कालीबंगा भूकंप से नष्ट हुआ भारतीय इतिहास का पहला शहर है.

साइंस एज (अक्तूबर, 1984, नेहरू सेंटर, मुंबई) में

डी.लाल ने कालीबंगा के भूकंप को अर्लीएस्ट डेटेबल अर्थक्वेक इन इंडिया कहा है. भूकंप के कारण धरती में पड़ी दरारों से सरस्वती का पानी नीचे भूमिगत जलधाराओं में जाकर लुप्त हो गया.

कालांतर में मौसमी बदलावों से अकाल, सूखा पड़ने लगा और भूगर्भीय परिवर्तनों के कारण अरावली पर्वतमाला ऊपर उठने लगी, जिससे सरस्वती की सहायता नदियों के रास्ते बदल गए और सरस्वती के बहाव क्षेत्र में टीले आकर जमने लगे और धीरे-धीरे रेगिस्तान बढ़ने लगा. इसी रेगिस्तान में कालीबंगा, पत्तन मुनारा जैसे नगर 2500-1500 ई.पू.में जमींदोज हो गए.

सरस्वती नदी का तट : दरअसल यह सभ्यता एक नदी के किनारे विकसित हुई जिसे सरस्वती नदी माना जाता है. कालीबंगा के मिट्टी के ढेर से मिले अवशेषों के आधार पर कहा गया है कि लगभग 4700 साल पहले यहां सरस्वती नदी के किनारे हप्पाकालीन सभ्यता फल-फूल रही थी. यह नदी अब घग्घर नदी के रूप में है. सतलज उत्तरी राजस्थान में समाहित होती थी.

इतिहास कहता है कि सिंधु घाटी सभ्यता दुनिया की सबसे व्यवस्थित सभ्यताओं में से एक थी. व्यवस्थित नगर, व्यवस्थित जीवन जैसे कि फुकुशिमा (जापान) के लोगों का? अगर आज से 5000 साल बाद सूनामी से तबाह हुए फुकुशिमा जैसे शहरों की बात होगी, तो इन्हीं शब्दों में लिखा जाएगा कि यह बहुत व्यवस्थित सभ्यता थी.

पेट्रा का भूकंप : अपने लंबे इतिहास के दौरान पेट्रा

(जार्डन) को बहुत सारे भूकंपों का सामना करना पड़ा है. विदित हो कि इसे अरबी में अल बतरा के नाम से जाना

जाता है जो कि दक्षिण जार्डन में स्थित है. यह शहर एक बहुत बड़ी अरेबियन प्लेट के ऊपर स्थित है जिसके परिणामस्वरूप धरती का ऊपरी भाग गतिशील रहता है. जो क्षेत्र प्लेटों के ऐसे स्थानों के नीचे होते हैं, जहां वे एक दूसरे से मिलती हैं या काटती हैं, ऐसे इलाकों में ज्यादातार भूकंप आता है. पूर्वी भूमध्यसागरीय इलाके में एक साथ तीन प्लेटें मिलती हैं इसलिए पेट्रा और इसका आसपास के क्षेत्र को भूकंपों से बहुत अधिक खतरा बना रहता है.

ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि 16 मई, ईसा पश्चात 363 में पेट्रा में एक बहुत भयानक भूकंप आया था जिससे इसे बहुत नुकसान हुआ था. समकालीन रिकार्ड में कहा गया है कि आधा शहर नष्ट हो गया था और पुरातत्वविदों का कहना है कि पेट्रा के मेन थिएटर को काफी नुकसान

पहुंचा था.

इसके प्रमुख मंदिर (कसर अल-बिंत) और कोलोनेडेड स्ट्रीट समाप्त हो गई थी. भूकंप के कारण पानी की सप्लाई को नुकसान पहुंचा था. आर्थिक रूप से सक्षम पेट्रा फिर से खड़ा हो सकता था, लेकिन व्यापार के मार्गों में बदलाव के कारण शहर की ताकत खत्म हो गई थी. ईसा पश्चात 363 में ऐसा लगता है कि पेट्रा को अपने को बनाने के साधन नहीं थे.

विदित हो कि 1976 में पुरातत्वविदों ने पेट्रा (जार्डन) की खुदाई करवाई और जहां से एक नष्ट हुए छोटे घर से पुरावस्तुएं मिलीं और 85 छोटे ऐसे कांसे के सिक्के मिले जिन पर रोमन सम्राट कांस्टेंटियस की तस्वीर बनी है और

इनमें से ज्यादा सिक्कों को ईसा पश्चात 354 में बनाया गया है. इसलिए कहा जा सकता है कि भूकंप इससे पहले नहीं आया होगा. इसको लेकर कई अन्य प्रमाण है. यह दुनिया का ऐतिहासिक शहर है.

पाम्पेई को निगला ज्वालामुखी : 79 ईसा पश्चात का यह रोमन शहर पाम्पेई एक नजदीकी ज्वालामुखी के फटने से नष्ट हो गया था. शहर की पूरी आबादा ज्वालामुखी के लावे और चट्टानों के नीचे दब गई. उस समय पाम्पेई की आबादी 20 हजार थी. यह एस समय पूरे रोम का सबसे शानदार पर्यटन स्थल था. 1748 में इसे अचानक से दोबारा खोजा गया.

मंदिरों का केंद्र कम्बोडिया : 800 ईसा पश्चात बसा शहर अंगकोरवाट कंबोडिया में स्थित है. 1431 में थाई सेना के आक्रमण के चलते यह नष्ट होता गया. इस शहर में

अनेक बौद्ध मंदिर थे. सन 1800 से पहले इस शहर का कोई नामो-निशान नहीं था. बाद में फ्रेंच पुरातत्वविदों के एक समूह ने इसे दोबारा खोजा. जहां भगवान विष्णु का विश्व का सबसे बड़ा मंदिर स्थित था, जो

अब बौद्ध मंदिर है.

ईसा पूर्व 464 में भूकंप ने स्पार्टा को नष्ट कर दिया. सभी को पता है कि 'स्पार्टावासी' बेमिसाल लड़ाका थे जिन्होंने फारस की आक्रमणकारी सेना को आगे बढ़ने से रोक दिया था. लेकिन यह बात बहुत कम लोगों को पता है कि उनका समाज उन गुलामों से भी बना था जिन्हें हेलोट्स कहा जाता था. बाद में इन्हीं लोगों ने स्पार्टा शहर को जीत लिया था. स्पार्टा के लोगों ने किसी तरह नाराज हेलोट्स पर काबू पा लिया था लेकिन 7.2 तीव्रता वाले भूकंप ने 20 हजार लोगों

के शहर को पूरी तरह नष्ट कर दिया था.

ईसा पूर्व 365 में सूनामी ने मेडीटेरिनियन महासागर स्थित क्रेट द्वीप को पानी में डुबा दिया था और इसी के साथ ही द्वीप की सांस्कृतिक विरासत भी पानी में समा गई. अब यह अंदाजा लगाया जाता है कि उस समय 8.5 की तीव्रती के भूकंप के कारण सूनामी आई थी. इस द्वीप के बारे में प्राचीन इतिहासकार अमीनस मार्सेलिनस के विवरण से जाना जा सकता है कि यह कितना समृद्ध था.

भूकंप कितना ताकतवर था इसे इस बात से जाना जा सकता है कि द्वीप के कुछ हिस्से नौ मीटर तक ऊंचे हो गए थे. साथ ही हजारों की जल समाधि हो गई थी. इस भूकंप से पैदा हुई दो मीटर ऊंची लहरें मिस्र के सिकंदरिया तक को नुकसान पहुंचाने में सफल रही थीं. इसी तरह आधुनिक लीबिया के बंदरगाह शहर अपोलोनिया भी सूनामी से पहले बहुत विस्तृत था, लेकिन सूनामी के कारण इसकी भी जल समाधि हो गई थी.

अब तक का सर्वाधिक भयानक भूकंप : अब तक का सर्वाधिक भयानक भूकंप 1556 में चीन में आया था, जिसका असर नौ राज्यों में हुआ था. 8 की तीव्रता वाले भूकंप में 830,000 लोग मारे गए थे. यह इतना भीषण था कि इसने

हुआ शान पर्वतों को मीलों दूर तक खिसका दिया था. इसके छह माह के बाद तक आफ्टर शाक्स आते रहे और इनका क्रम पांच वर्षों तक बना रहा. विदित हो कि पायरेटस आफ कैरिबियंस में जिस पोर्ट रायल बंदरगाह को दर्शाया गया है, वह किसी समय वास्तविक बंदरगाह था. पर 1962 में आए एक भीषण भूकंप के चलते न केवल बंदरगाह वरन आसपास का इलाका पानी में चला गया. ब्रिटिश सरकार के नियंत्रण वाला दो तिहाई हिस्सा पानी के 8 मीटर नीचे समा गया. इस दुर्घटना में पांच हजार लोगों की मौत हुई थी.

भूकंप और सूनामी के गठजोड़ ने पुर्तगाल की राजधानी लिस्बन को तहस नहस कर दिया और 8.7 की तीव्रता के भूकंप से 33 फीट ऊंची लहरों ने दस मिनट में ही न केवल पुर्तगाल वरन स्पेन और मोरक्को को भी चपेट में ले लिया और इस आपदा में कम से कम 50 हजार लोगों की जान चली गई. लेकिन इस घटना के बाद एक सकारात्मक परिवर्तन यह हुआ कि भूकंप और सूनामी जैसी आपदाओं के बारे में वैज्ञानिक तरीकों से सोचा जाने लगा.

दक्षिणी अमेरिका के पेरु में स्थित माचु-पिच्चु दुनिया

के सर्वाधिक रहस्यमय शहरों में से एक है. एंडीज पर्वत पर बसा यह शहर दुनिया के सात आश्चर्यों में से एक है. 1911

में अमेरिकी इतिहासकार हिराम बिंघम ने दोबारा इसकी खोज की थी. इस शहर के अवशेष दुनिया के सबसे प्राचीनतम शहरों में से एक हैं.

ट्राय आधुनिक तुर्की में आज भी स्थित है. यह ऐतिहासिक शहर ट्रोजन वार के लिए हमेशा से चर्चा में रहा है. यह एक बेहद पुराना शहर था, जिसे 1870 में हेनरिच शीलमैनन ने दोबारा से एक खुदाई के दौरान खोजा था. पुराना ट्राय स्कैमेंडर नदी के किनारे बसा था और लकड़ियों के रों से घिरा हुआ था.

ब्राजील के घने जंगलों में बसा शहर जेड दुनिया के सबसे आधुनिक बसाहट वाले शहरों में गिना जाता रहा. जेड शहर में पुलों का नेटवर्क, सड़कें और मंदिर थे. जेड को 1753 में एक पुर्तगाली ने खोजा था और इसके पहले यह कभी चर्चा में नहीं आया. उसके बाद यह शहर खोजकर्ताओं को सबसे ज्यादा आकर्षित करता रहा.

वर्ष 1925 में इसकी खोज में गए खोजकर्ता पर्सी

फेवसेट फिर कभी नहीं लौटे और इसके बाद कई खोजकर्ता भी गुम हो गए. हाल ही के वर्षों में इस शहर को कुहीकुगू नाम से अमेजन के जंगलों में दोबारा खोजा गया. जेड की सभ्यता के निशान इस शहर में दिखाई देते हैं. संभव है कि यह पुराना जेड शहर हो.

अटलांटिक सभ्यता : अब से 25-30 हजार वर्ष पहले अटलांटिक महासागर में एक महाद्वीप की सभ्यता संसार में सर्वश्रेष्ठ थी, ऐसा पता कुछ शोध करने वाले विद्वानों ने लगाया है. पर वह भी काल के थपेड़ों, भूकंप के धक्कों से विनष्ट हो गई और वहां के इने-दिने व्यक्ति ही बच कर अन्य स्थानों में पहुंच सके जहां उन्होंने नई सभ्यताओं को जन्म दिया.

एटलांटिस सिवाय एक मिथ के कुछ नहीं रहा. 360 ईसा पूर्व सबसे पहले यूनान के दार्शनिक प्लेटो ने इसे दुनिया का सर्वाधिक सभ्य नागरिक सभ्यता का केंद्र माना था. समुद्र में डूबकर एक पहेली बन जाने वाले इ शहर को पूरे यूरोप का केंद्र भी कहा जाता रहा. बहरहाल, एटलांटिस की खोज भी लंबे समय तक जारी रही, लेकिन यह शहर एक तरह से प्लेटो की कल्पना ही बना रहा. लेकिन वैज्ञानिकों का मानना है कि वे एक ना एक दिन इस शहर को भी खोज लेंगे.

लेखक संपर्क : ग्राम-समड़ोरी, पोस्ट-पथरहटा, जिला-उमरिया (म.प्र.)

जनहित में कृषि रसायन विज्ञान

- डॉ.दिनेश मणि

यह कहना अतिश्योक्तिपूर्ण न होगा कि हम रसायनों के युग में जी रहे हैं. हमारे आसपास की सारी वस्तुएं और हम सब रासायनिक यौगिकों से बने हैं. वास्तव में जीवन की प्रक्रियाएं, क्रमिक रासायनिक अभिक्रियाओं का ही परिणाम हैं. हवा, मिट्टी, पानी, भोजन, वनस्पति और जीवजंतु ये सब रासायनिक सच्चाई के रूप में प्रस्तुत हैं. पानी, जो

जीवन का आधार है, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन से बना एक रासायनिक यौगिक है. चीनी, कार्बन हाइड्रोजन और ऑक्सीजन से बनी है, रोगों और बीमारियों को दूर करने वाली औषधियां, एंटीबायोटिक, उर्वरक, पेस्टीसाइड्स सभी तो रासायन हैं. इनमें से जो रसायन कृषि के क्षेत्र में प्रयोग किए जाते हैं उन्हें सामूहिक रूप से कृषि रसायन कहा जाता है.

कृषि रसायन विज्ञान का इतिहास आदिकाल से प्रारंभ होता है. वेदों एवं पुराणों में कृषि उत्पादन के निमित्त मृदा में खाद डालने का उल्लेख मिलता है. कृषि की उन्नति में रसायन विज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका रही है, कृषि रसायनविदों के अनेक वर्षों के अनवरत परिश्रम के परिणामस्वरूप कृषि रसायन विज्ञान वर्तमान में वृहत रूप धारण कर चुका है और कृषि के विभिन्न क्षेत्रों में रसायनों के प्रयोग से आशातीत सफलताएं मिली हैं.

कृषि रसायन विज्ञान के आधुनिक तरीकों का प्रयोग करके खेत, पौधघर और प्रयोगशाला में मृदा के गुणों और मृदा प्रबंध की कार्य प्रणालियों की प्रक्रियाओं का अध्यन किया जा रहा है. पौधों की उचित वृद्धि एवं विकास हेतु आवश्यक पोषक तत्वों की अनिवार्यता से लेकर पौधों को विभिन्न कीटों एवं रोगों से बचाने हेतु नाशीजीव रसायनों के प्रयोग तक कृषि रसायन विज्ञान का महत्वपूर्ण योगदान है.

1931 ई.में सर हंफ्री डेवी ने 'एलीमेंट्स ऑफ एग्रीकल्चरल केमिस्ट्री' नाम से एक पुस्तक लिखी.इसके माध्यम से डेवी ने यह बताने का प्रयत्न किया कि मिट्टी में जीव जंतुओं और पौधों के सड़ने से वनस्पति की वृद्धि होती है. उनके मतानुसार अकार्बनिक तत्व उत्तेजक का काम करते हैं और मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ ही वनस्पति के लिए मुख्य खाद्य

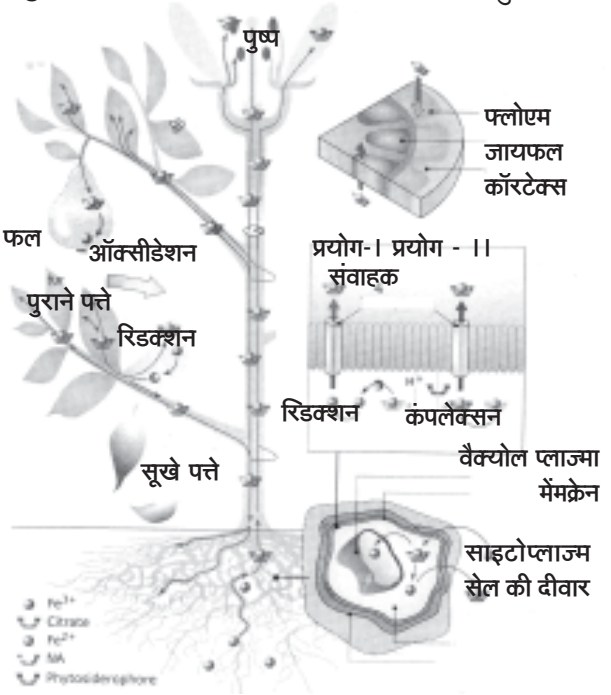

पदार्थ हैं.

1840 में महान जर्मन रसायनवेत्ता लीबिग को ब्रिटिश एसोसिएशन फॉर एडवांसमेंट ऑफ साइंस नामक प्रमुख संस्था द्वारा कार्बनिक रसायन की प्रगति पर रिपोर्ट प्रस्तुत करने हेतु आमंत्रित किया गया था. यही रिपोर्ट इनकी बहुचर्चित पुस्तक 'आर्गेनिक कैमिस्ट्री एंड इट्स एप्लिकेशन टू एग्रीकल्चर एण्ड फिजियोलॉजी' के रूप में प्रकाशित हुई. यह पुस्तक इतनी लोकप्रिय हुई कि 8 वर्षों में इसके 17 संस्करण प्रकाशित हुए. अन्य भाषाओं में भी इसके अनुवाद प्रकाशित किए गए. लीबिग ने खनिज सिद्धांत का प्रतिपादन किया लीबिग के इस बहुविख्यात 'खनिज सिद्धान्त' के अनुसार पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक खनिज तत्वों की पूर्ति आवश्यक है. यदि मिट्टी में इन तत्वों की कमी रहती है तो उन्हें खादों को रूप में बाहर से डालने की आवश्यकता पड़ती है. जो तत्व पौधों की राख में उपस्थित रहते हैं. उनकी पूर्ति खाद के रूप में की जा सकती है. यही उर्वरकों का खनिज सिद्धांत है. इस सिद्धांत का विश्वव्यापी प्रभाव हुआ और उर्वरकों के उपयोग का प्रारंभ हुआ. रासायनिक उर्वरकों के उत्पादन एवं उपयोग में लीबिग का महत्वपूर्ण योगदान रहा है. आज अधिक फसलोत्पादन के लिए रासायनिक उर्वरक अनिवार्य सिद्ध हो चुके हैं.

पादप पोषण संबंधी तथ्यों को पुष्ट आधार दिलाने में लीबिग के खनिज सिद्धांत ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. बाद के अन्य वैज्ञानिकों ने जल-संवर्धन प्रयोगों से जो निष्कर्ष

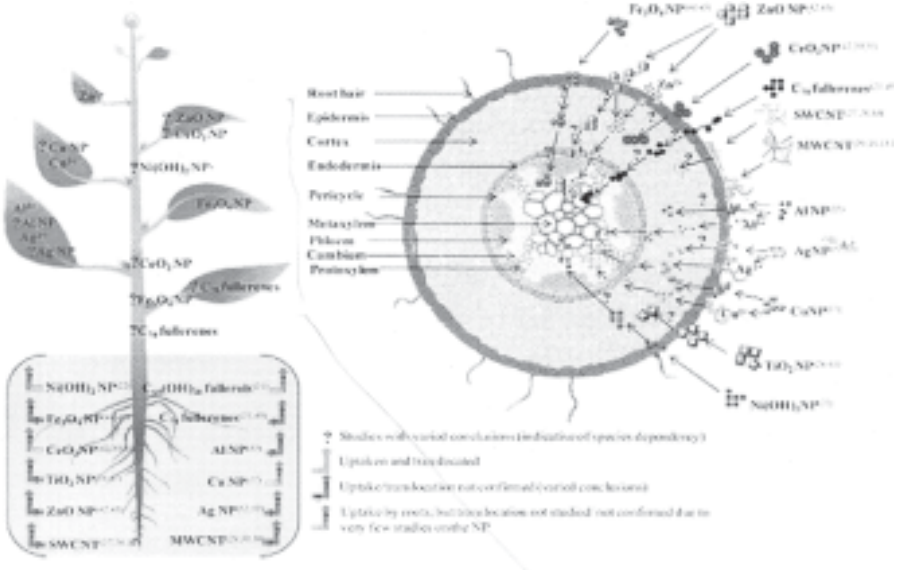

निकाले उनसे भी यह स्पष्ट हो गया कि पौधों के पोषण में निजों की महत्वपूर्ण भूमिका है. आज लीबिंग की कल्पना साकार होती दिखाई दे रही है. 1939 में आर्नन तथा स्टाउट ने अनिवार्यता के तीन मानदण्ड प्रस्तुत किए जो आज भी सर्वमान्य है. कोई भी तत्व तब तक अनिवार्य नहीं मान जाएगा जब तक -

1. ऐसे तत्व की न्यूनता के कारण पौधे को अपना जीवन-चक्र पूरा करना असंभर न हो जाए.

2. यह न्यूनता विचाराधीन तत्व के लिए विशिष्ट हो और उसकी आपूर्ति उसी तत्व को प्रदान करके न की जा सके.

3. ऐसा तत्व पादप पोषण में प्रत्यक्ष भाग न लेता हो.

चट्टानों, खनिज लवणों तथा कार्बनिक पदार्थों से निर्मित मृदा पौधों की जननी है जिसके गर्भ में बीज अंकुरित एवं कलांतर में पल्लवित एवं पुष्पित होते हैं. पौधों की उचित वृद्धि एवं विकास मृदा में विद्यमान पोषक तत्वों की उपलब्धता पर निर्भर करता है. इन पोषक तत्वों में कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन पौधे मृदा, जल एवं वायु से प्राप्त कर लेते हैं. नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाशियम मुख्य पोषक तत्व हैं. इनकी कमी से पौधों की वृद्धि एवं विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है. कैल्शियम, मैग्नीशियम तथा सल्फर द्वितीयक पोषक तत्व है, इनकी भी आपूर्ति मृदा में सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है.तिलहनी फसलों की खेती में सल्फर का प्रयोग किया जाना अति आवश्यक है. इसके अतिरिक्त सूक्ष्ममात्रिक पोषक तत्वों जैसे-आयरन, मैगनीज, कॉपर, जिंक, मोलिब्डेनम, बोरोन, क्लोरीन तथा निकेल की आवश्यकता सूक्ष्य मात्रा में होती है. इनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए. मृदा परीक्षण से प्राप्त परिणामों के आधार पर इन पोषक तत्वों का उचित मात्रा एवं उचित समयानुसार प्रयोग किया जाना आवश्यक है.

मृदा से कैल्शियम तथा अन्य क्षारकों के निक्षालित होकर निकल जाने के पश्चात उनका स्थान हाइड्रोजन आयन द्वारा ग्रहण करने के कारण मृदाएं अम्लीय हो जाती हैं. ऐसी मृदा के पुनरुद्धार के लिए चूने का प्रयोग किया जाता है जिससे कैल्शियम तथा मैगनीशियम जैसे क्षारक पुनः हाइड्रोजन को मृदा से हटाकर उसका स्थान ग्रहण कर लेते हैं. अम्लीय मृदा के सुधार के पुनरुद्धार के लिए मुख्य रूप से कैल्शियम कार्बोनेट, कैल्शियम ऑक्साइड, मैग्नीशियम हाइड्रोऑक्साइड जैसे यौगिकों का प्रयोग किया जाता है.

क्षारीय मृदाओं में मृदा से कैल्शियम हट जाता है और उसके स्थान पर सोडियम आ जाता है. क्षारीय मृदाओं में विनिमयशील सोडियम की अधिकता होती है. क्षारीय मृदाओं को सुधारने के लिए ऐसे पदार्थों का उपयोग किया जाता है जो घुलनशील कैल्शियम की आपूर्ति करते हैं अथवा अम्लीय प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं. इनमें से प्रमुख हैं - जिप्सम पाइराइट, गंधक का अम्ल, फेरस सल्फेट इत्यादि रसायन फसलों को नुकसान पहुंचाने वाले खरपतवारों कीटों, कवकों, सूत्रकृमियों इत्यादि को नियंत्रित करते हैं. रसायन हू भूखे लोगों का पेट भरने के लिए खाद्य पदार्थों का उत्पादन बढ़ाने में उर्वरकों के माध्यम से पोषक तत्व उपलब्ध कराते हैं. खड़ी फसल तथा भंडारित अनाज को रोगों और नाशीजीवों से बचाने में पेस्टीसाइड के माध्यम से रसायन की मददगार हैं. रसायन, खाद्य पदार्थों को लंबे समय तक ताजा बनाए रखने, उन्हें ज्यादा स्वादिष्ट बनाने और उनकी पोषण क्षमता बढ़ाने में भी काम आते हैं.

हमारे देश की जलवायु कीटों एवं बीमारियों के फैलने के लिए अत्यधिक अनुकूल है. इनसे होने वाली हानि को देखते हुए विश्व कृषि एवं खाद्य संगठन का कहना है कि 'कृषि उत्पादन में कृषि शत्रुओं को नष्ट करना ही सबसे अधिक महत्व का विषय है.' यदि कृषि को सम्पन्न बनाने के लिए हमें सिंचाई, खाद व उर्वरकों और उन्नत बीजों का पूरा-पूरा लाभ उठाना है तो हमें कृषि शत्रुओं के साथ पूर्ण दक्षता, कुशलता, साहस और पूर्ण प्रभावशाली उपायों के साथ जूझना पड़ेगा.

विभिन्न प्रकार के पादप हार्मोनों के द्वारा फसलों की उपज में वृद्धि की जा सकती है. पादपक हार्मोन ऐसे कार्बनिक पदार्थ होते हैं जो पादपों के किसी विशे, ऊतक में संश्लेषण के द्वारा उत्पन्न होकर अन्य भागों में पहुंचते हैं जहां वे अति सूक्ष्म मात्रा में उपस्थित होकर कोशिकाओं की वृद्धि को नियंत्रित करते हैं. कुछ प्रचलित पादप हार्मोन इस प्रकार हैं, ऑक्सिजन, जिबरेलिन, साइटोकाइनिन. आधुनिक युग में कृषि तथा फल उद्योग में पादप हार्मोनों का विशेष महत्व है. पौधों के बीजों के बोने से लेकर फूलने-फलने तक की विभिन्न क्रियाओं को हार्मोन द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है. इन हार्मोनों का संश्लेषण औद्योगिक स्तर पर होने से फसलोत्पादन में इनकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है.

अन्य रसायनों की भांति कृषि रसायन हमारी आवश्यकता है. इनका इस्तेमाल सुरक्षित ढंग से और सुरक्षित मात्रा में होना चाहिए. इस प्रकार आधुनिक कृषि में रसायनों का प्रयोग अपरिहार्य बन चुका है. कृषि रसायन विज्ञान के क्षेत्र में हो रही उत्तरोत्तर प्रगति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि भविष्य में कृषि रसायन विज्ञान की सहायता से मृदा एवं पादप पोषण से संबंधित अनेक समस्याओं के निराकरण में सहायता मिलेगी.

लेखक संपर्क : विज्ञान परिषद प्रयाग, इलाहाबाद-211,002

टिप्पणियां

चलें दस हजार कदम...

यह बिना खर्च के सबसे सरल व्यायाम है. वर्तमान आंकड़ों के अनुसार हम हमेशा से कम चल रहे हैं. एडिनबर्ग यूनिवर्सिटी की खोज के अनुसार हम पिछले दशक की अपेक्षा एक वर्ष में 80 मील (129 किलोमीटर) कम चल रहे हैं. वैज्ञानिकों की सिफारिश तो यह रही है कि स्वस्थ रहने के लिए कम-से-कम 10000 से 12000 कदम रोज चलें. यदि वजन घटाना हो तो 15000 कदम रोज चलें, किंतु सामान्यतः अब हम 3000 से 4000 कदम ही चल पा रहे हैं.

सभी को है लाभ : *अधिक पैदल चलने के लिए सब को बदलना होगा. शोध कार्यों से यह निश्चित हो चुका है कि हर उम्र के व्यक्ति को चलने से अनेक लाभ हैं. इससे कैंसर से होने वाली मृत्यु का खतरा 34 प्रतिशत कम हो जाता है. 50 प्रतिशत से अधिक व्यक्तियों में टाइप-2 डाइबिटीज का खतरा टल जाता है. नियमित रूप से तेज गति से पैदल चलने से उच्च रक्तचाप, उच्च कोलेस्ट्राल और डाइबिटीज की समस्या में कमी आती है. चलने से हड्डियाँ मजबूत होती हैं, जिससे ऑस्टियोपोरोसिस का खतरा कम हो जाता है. दौड़ने की बजाय चलने से नितंबों, एड़ियों और घुटनों के जोड़ों पर भी 26 प्रतिशत कम दबाव पड़ता है.*

एक अन्य अध्ययन के अनुसार दैनिक कार्यों के दौरान प्रतिदिन संयत रूप से 2000 कदम (या 20 मिनट) चलने से हृदयाघात का खतरा 8 प्रतिशत कम हो जाता है. 4000 कदम (या 40 मिनट) चलने से कोलेस्ट्राल कम करने वाली औषधियों के प्रभाव जितना लाभ मिलता है. इससे हृदय रोगों का खतरा 16-20 प्रतिशत कम हो जाता है, जो स्टेटिन के सेवन के समतुल्य है. अच्छे स्वास्थ्य के लिए 20 से 30 मिनट पैदल चलना ही होगा, अतः छोटी-मोटी दूरियों के काम पैदल चल कर ही करना चाहिए.

क्या वजन घटेगा? : *विशेषज्ञों का मानना है कि वजन नियंत्रण के लिए 10000 कदम चलना पर्याप्त नहीं है. स्वीडन के प्रोफेसर एन्डर्स राउसटार्प के अनुसार 18 से 40 वर्ष तक की महिलाओं को 12000 कदम प्रतिदिन तथा 40 से 50 वर्ष तक की महिलाओं को 11000 कदम प्रतिदिन चलना होगा. 18 से 50 वर्ष तक के पुरुषों को 12000 कदम प्रतिदिन तथा 50 से अधिक उम्र होने पर 11000 कदम प्रतिदिन चलना चाहिए. चलने पर शरीर द्वारा खर्च होने वाली कैलोरी की दृष्टि से देखा जाए तो सामान्यतः 70 किलोग्राम वाला व्यक्ति यदि 10000 कदम चलता है तो 440 कैलोरी ऊर्जा खर्च होगी, जबकि वजन घटाने के लिए 600 कैलोरी ऊर्जा खर्च होनी चाहिए.*

सही चाल : *चलते समय अपनी गति संतुलित रखें और अपने हावभाव पर ध्यान दें. कंधे आरामदेह स्थिति में तथा आपके हाथ आपके कदमों की लय के साथ आगे-पीछे होते रहें. तेज गति से चलते समय इस बात पर ध्यान दें कि आपके हाथ दाई-बाईं ओर न झूलें, पैरों के घुटने न जुड़े तथा आगे बढ़ते समय होने झुकाव के कारण कमर को न झुकाएं बल्कि इस झुकाव को एड़ियों से नियंत्रित करें.*

वरिष्ठ जन ध्यान दें : *विशेषज्ञों के अनुसार उन वरिष्ठ नागरिकों को जिन्हें घुटने के आर्थ्राइटिस का खतरा है, प्रतिदिन 6000 कदम ही चलना चाहिए. फ्लोरिडा के डॉ. मार्को पेहर के अनुसार एक सप्ताह में 150 मिनट पैदल चलने से वरिष्ठ मरीजों में विकलांगता के मामलों में 18 प्रतिशत कमी आई. पूर्ण रूप से विकलांगता में 28 प्रतिशत कमी आई.*

उपर्युक्त स्थितियों पर गौर करें तो पता चलता है कि सभी आवश्यकता से कम चल रहे हैं. अतः विशेषज्ञों के दिशा-निर्देशों के अनुसार एक सामान्य व्यक्ति को रोज 10000 कदम चलने का लक्ष्य तय करना चाहिए. जो अभी भी पैदल नहीं चल रहे हैं, उनके लिए सलाह है कि वे 6000 कदमों से शुरू करें और फिर धीरे-धीरे यह लक्ष्य बढ़ाकर कम से कम 10000 कदम जरूर चलें. इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए अपने कुछ दैनिक कार्य पैदल चलकर पूरा करना न भूलें.

सामुद्रिक तापमान वृद्धि

मानवीय गतिविधियों के कारण समुद्र का तापमान भी बढ़ा है. यह बात हाल ही में एक अंतरराष्ट्रीय टीम द्वारा किए गए खोज कार्य के दौरान सिद्ध हुई है. आई.आई.टी., दिल्ली के वैज्ञानिक सहित इस खोज टीम ने पता लगाया है कि विगत 50 वर्षों से समुद्रों के बढ़ते तापमान के पीछे मुख्य रूप से मानवीय कार्यकलाप हैं. यह जानकारी मौसम वैज्ञानिकों के लिए महत्तवपूर्ण है, इससे अब उन्हें जलवायु परिवर्तन के प्रभाव के सही आकलन में सहायता मिलेगी.

समुद्री प्रक्रियाओं के अध्ययन में अनेक समस्याएं रही हैं. एक तो सभी समुद्रों से एक समान रूप से आंकड़े नहीं मिल पाते हैं, इसके अलावा अनेक यंत्र दोषपूर्ण होते हैं एवं उनसे गलत आंकड़े मिलते हैं. इन कारणों से समुद्री प्रक्रियाओं के विश्वसनीय अध्ययन में बाधा रही है. यू.एस.के लॉरेंस लीवरमोर नेशनल लेबोरेटरी के मौसम विज्ञानी और टीम लीड पीटर ग्लेक्लर के अनुसार इस नए अध्ययन में मानवीय

गतिविधियों सहित परिणामों में असर डालने वाले सभी कारकों पर विशेष रूप से अध्ययन किया गया है. पीटर कहते हैं कि अब यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि पिछले 50 वर्षों में पाया गया ग्लोबल ओशन वार्मिंग मानवीय कार्यकलापों के कारण हैं. केवल प्राकृतिक पारिवर्तनशीलता इसका कारण नहीं है.

खोजी टीम ने समुद्र की ऊपरी परतों के औसत तापमान का अध्ययन किया. सतह से 700 मीटर भीतर तक औसत ओशन वार्मिंग लगभग 0.025 डिग्री सेल्सियस प्रति दशक तथा 50 वर्षों में एक डिग्री सेल्सियस के 1/10 वें भाग से थोड़ा अधिक पाया गया. वैज्ञानिकों के अनुसार समुद्री तापमान के आंकड़ों का समुद्र संबंधी भावी अनुमान लगाने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है. समुद्री तापमान का संबंध समुद्री जल के तापीय विस्तार से होता है. अनुमान लगाने में इस तापीय विस्तार का योगदान 70-75 प्रतिशत होता है. इससे अब समुद्री सतह में वृद्धि, फिशरीज के भविष्य एवं समुद्र द्वारा अवशोषित किए जाने वाले कार्बन डाइऑक्साइड का ठीक-ठीक पता चल सकेगा.

मौसम संबंधी इंटर-गव्हर्नमेंटल पेनल (आईपीसीसी) के अनुसार चूंकि अब तक मानवीय गतिविधियों के कारण समुद्री तापमान में परिवर्तन का पता नहीं चल पाया था, इसलिए समुद्र स्तर वृद्धि संबंधी पिछले अनुमान पूर्ण रूप से सही नहीं हो पाते थे. किंतु अब इस नई खोज से मौसम वैज्ञानिकों को विश्वास है कि वे सही-सही अनुमान प्रस्तुत कर सकेंगे. इससे न केवल समग्र रूप से जलवायु परिवर्तन का पता लगाया जा सकेगा, बल्कि यह भी पता चलेगा कि मानसूनी हवाओं जैसे ग्लोबल विंड सर्कुलेशन का आगामी दशकों में क्या रूख होगा.

रॉक साल्ट, फ्लोराइड और एनीमिया

फ्लोराइड के अधिक सेवन के बारे में विशेषज्ञ आरंभ से ही चेतावनी देते रहे हैं. असंसाधित जल और भोजन के माध्यम से फ्लोराइड शरीर में प्रवेश करता है और इससे फ्लोरासिस हो जाता है, जो अस्थियों और दाँतों को प्रभावित करता है. इससे दांत बदरंग हो जाते हैं, जबकि इससे दीर्घकालिक प्रभाव से हड्डियों में विकृति पैदा होती है, जैसे- पैरों का कमान की तरह मुड़ना या पैरों का घुटनों के पास एक-दूसरे की तरफ मुड़ जाना. संपूर्ण विश्व में पेयजल पूर्ति के दौरान फ्लोराइड को नियंत्रित किया जाता है ताकि इसकी विषाक्तता से बचा जा सके.

संदूषित भू-जल : यद्यपि भारत में वैधानिक रूप से पेयजल के एक लीटर में फ्लोराइड को एक मिलीग्राम तक सीमित रखा जाता है, फिर भी जन-स्वास्थ्य की दृष्टि से फ्लोरोसिस एक प्रमुख समस्या है. ग्रामीण जन भू-जल पर निर्भर होते हैं. यह भू-जल बहुधा संदूषित रहता है. इस संबंध में अध्ययन के लिए ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेस, नई दिल्ली से 17 वर्ष पूर्व सेवानिवृत्त डॉ.ए.के.सुशीला ने एक संकल्पित अभियान के अंतर्गत फ्लोराइड रिसर्च एंड रूरल डेवलपमेंट फाउंडेशन की स्थापना

की. उन्होंने यूनीसेफ के लिए फ्लोराइड पर एक राष्ट्रव्यापी अध्ययन किया और पाया कि भारत के 32 में से 19 राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों में फ्लोरोसिस प्रमुखता से विद्यमान है. अध्ययन के अनुसार प्रत्येक 100 भारतीयों में से पांच कमोबेश फ्लोरोसिस के शिकार हैं.

रॉक-साल्ट और ब्लैक टी : डॉ.सुशीला और उनके साथियों द्वारा किए गए अध्ययन में सबसे चौंकाने वाली बात यह है कि सामान्य धारणा के विपरीत केवल पेयजल ही नहीं बल्कि कई अन्य खाद्य पदार्थों के माध्यम से फ्लोराइड का शरीर में प्रवेश हो रहा है. गोलगप्पों और पैक किए गए नमकीनों को विशेष स्वाद देने के लिए रॉक साल्टों (खनिज नमक, सेंधा नमक आदि) का प्रयोग किया जाता है, जिनमें फ्लोराइड अधिक मात्रा में होते हैं. डॉ.सुशीला के अनुसार जब इन खाद्य पदार्थों का लंबे समय तक सेवन होता है तो फ्लोराइड शरीर में जमा होने लगता है.

इसी तरह ब्लैक टी के सेवन से भी फ्लोराइड की मात्रा बढ़ती हैं. सामान्यतः चाय का उत्पादन अम्लीय भूमि में होता है, जिससे इसमें फ्लोराइड की मात्रा अधिक होती है. इसीलिए चाय में जब दूध मिलाया जाात है तब इसका कैल्शियम फ्लोराइड को निष्प्रभावी कर देता है.

फ्लोराइड और गर्भवती महिलाएं : फाउंडेशन द्वारा किए गए अध्ययन से एक और विशेष बात सामने आई कि फ्लोराइड लाल रक्त कोशिकाओं को नष्ट कर देता है, जिससे हीमोग्लोबिन की कमी हो जाती है. इसके परिणामस्वरूप यदि किसी व्यक्ति को फ्लोरोसिस है तो उसका एनीमिया इलाज के बावजूद भी ठीक नहीं होात. इससे इस बात का भी पता चलता है कि एनीमिया नियंत्रण का भारतीय राष्ट्रीय कार्यक्रम क्यों विफल हो गया.

सरकारी अस्पतालों में गर्भवती महिलाओं को आयरन और फॉलिक एसिड की गोलियां दी जाती हैं ताकि उनमें हीमोग्लोबिन का स्तर अच्छा बना रहे और बच्चे स्वस्थ पैदा हों. आयरन की कमी से गर्भवती स्त्रियों में अनेक समस्यायें आती हैं. गर्भपात और प्रसूती मृत्यु की उच्च दर इसी कारण से है. नवजात शिशु के वजन में भी कमी इसी वजह से होती है, जिससे मस्तिष्क और थॉयरॉयड की क्षति जैसे खतरे मौजूद रहते हैं. प्रत्येक वर्ष भारत में आयरन की करोड़ों गोलियों का वितरण होता है, फिर भी विश्व में प्रसूता मृत्यु दर भारत में सबसे अधिक है. वर्ष 2011 की यूनीसेफ की एक रिपोर्ट के अनुसार कम वजन वाले नवजात शिशुओं का प्रतिशत भारत में 43 है, जबकि वैश्विक औसत 25 है.

स्ट्रीट फूड : स्वास्थ्य अधिकारी कहते हैं कि महिलाएं दवाइयों का सेवन ठीक तरीके से नहीं करती हैं, जिससे स्थिति में सुधार नहीं हो रहा है. डॉ.सुशीला के अध्ययन के अनुसार यह बात सही नहीं है. वे कहती हैं कि गर्भवती महिलाएं स्वास्थ्य के प्रति गंभीर होती हैं, क्योंकि वे स्वस्थ शिशु की चाह रखती हैं. दरअसल, गलती इस प्रकार होती है कि वे तमाम सावधानियों के बावजूद 'स्ट्रीट फुड' खाना नहीं छोड़ती हैं, जिसमें प्रायः रॉक-साल्ट मौजूद होता है. यही कारण है कि दवाइयों और सुरक्षित जल के सेवन के बावजूद भी ऐसी महिलाओं में हीमोग्लोबिन का स्तर कम और फ्लोराइड का स्तर अधिक हो जाता है. अतः एक अध्ययन के दौरान जब ऐसी गर्भवती महिलाओं को 'रॉक साल्ट' युक्त भोजन देना बंद किया गया और उसके बदले पत्तेदार सब्जियां दी गई तो उनके हीमोग्लोबिन स्तर में उल्लेखनीय सुधार हुआ. उन सभी महिलाओं ने स्वस्थ शिशुओं को जन्म दिया, जिनका वजन 2.5 से 3.9 किलोग्राम था.

इन परिणामों से प्रोत्साहित होकर डॉ.सुशीला के फाउंडेशन ने इंडियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च के वित्तीय सहयोग से दिल्ली के एक शासकीय कन्या विद्यालय में एक कार्यक्रम शुरु किया. इसके अंतर्गत छात्राओं को स्ट्रीट फुड नहीं लेने दिया गया ताकि एनीमिया से बचा जा सके. इसके माध्यम से यह सिद्ध भी हुआ कि अत्यधिक फ्लोराइड के सेवन से हीमोग्लोबिन में कमी आती है. इसके अलावा यह भी पता चला कि सही आहार के सेवन से आयरन की गोलियों के बिना भी हीमोग्लोबिन के स्तर में अच्छा सुधार होता है.

समस्या सभी की : फाउंडेशन के अध्ययन से यह भी प्रदर्शित हुआ कि फ्लोराइड विषाक्तता केवल गरीबों की ही समस्या नहीं है, बल्कि मध्य और उच्च वर्ग के परिवार भी इसकी चपेट में हैं. यह विषाक्तता अलग-अलग रूपों में प्रकट होती है. पेट की तकलीफ एवं कूल्हे, घुटने व जोड़ों के दर्द के रूप में यह सामने आती है. डॉ.सुशीला के अनुसार फ्लोराइड विषाक्तता के बारे में डॉक्टरों की सीमित जागरूकता के कारण रोग का पता लगाना कठिन हो जाता है.

परिवर्तन जरूरी : आज फ्लोराइड विषाक्तता के कारण अनेक मरीज घुटने और कूल्हे की रीप्लेसमेंट सर्जरी करवाते हैं, जबकि जीवन शैली में थोड़ा परिवर्तन कर फ्लोराइड को शरीर से बाहर किया जा सकता है. इससे थोड़े समय में ही राहत मिल जाती है. इसके लिए आवश्यक है कि रक्त और पेशाब के सैंपलों की जांच कर फ्लोराइड की मात्रा का पता लगाया जाए. वर्तमान में देश के कुछ केंद्रों में ही यह सुविधा मौजूद है.

फाऊंडेशन के अध्ययन दल का कहना है कि फ्लोराइड

विषाक्तता की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जाता है जितना कि अपेक्षित है. इससे उपर्युक्त समस्याओं के अलावा आंतों के अच्छे बैक्टीरिया भी नष्ट हो जाते हैं और विटामिन बी-12 के उत्पन्न होने में बाधा पहुंचती है. दरअसल, इस समस्या का सबसे आसान हल यह है कि पानीपूरी की तरह वस्तुओं के सेवन से बचा जाए और ब्लैक टी लेना छोड़ दिया जाए.

तांबे की अद्‌भुत रोगाणुरोधक शक्ति

रोगाणुओं को नाश करने की तांबे की अद्‌भुत क्षमता ने इक्कीसवीं सदी के वैज्ञानिकों और डॉक्टरों का ध्यान आकर्षित किया है. हाल ही में देश-विदेश में हुए खोजकार्यों से इस बात की पुष्टि हुई है कि तांबा अतिप्रतिरोधी रोगाणुओं को नष्ट करने में सक्षम है. वैसे तो तांबे के प्रयोग की शुरूआत 5000 ईसा पूर्व से कर रहे हैं. प्राचीन भारतीय ग्रंथ चरक संहिता (300 ईसा पूर्व) में भी तांबे की घातक रोगाणुओं को नष्ट करने की शक्ति का उल्लेख है.

पेयजल और तांबा : इंस्टीट्यूट ऑफ आयुर्वेद एंड इंटीग्रेटिव मेडिसिन (आईएआईएम), बैंगलुरु की विज्ञानी पद्मा वेंकटसुब्रमणियन के अनुसार तांबे के पात्र में रखे गए पेयजल में कॉलरा, डिसेंट्री और डायरिया पैदा करने वाले बैक्टीरिया, जैसे-विब्रियो कॉलरी, शिगेला फ्लेक्सनेरी, एस्केरिया कोली, सेलमोनेला टाइफी आदि नष्ट हो जाते हैं. इस विज्ञानी का कहना है कि बीमारियां पैदा करने वाले रोगाणुओं पर तांबे के प्रभाव का अध्ययन पहली बार किया गया है.

इस अध्ययन के परिणामों को देखते हुए गांवों या शहरी स्लमों में सुरक्षित पेयजल प्रदान करने हेतु तांबे का प्रयोग किया जा सकता है. किंतु यदि तांबे का मूल्य देखें तो 10-20 लीटर के पात्र की कीमत लगभग रू.10,000 रु. आएगी. इस लागत को कम करने के लिए आईएआईएम की टीम ने एक 'ताम कॉयल युक्ति' विकसित की है. इसमें बहुत ही कम मात्रा में तांबा लगता है और यह प्रभावी रूप से काम करता है. सुरक्षित जल के लिए इस ताम्र युक्ति को पानी रखे पात्र में रातभर रखना होता है.

घायक रोगाणुओं का नियंत्रण : यूनिवर्सिटी ऑफ साउथैम्प्टन, यू.के.के विज्ञानी बिल कीविल ने भी एक प्रयोग कर यह प्रदर्शित किया है कि कैसे तांबे की सतह पर कखे गए मेथिसिलीन प्रतिरोधी स्टेफीलोकोकस ऑरियस बैक्टीरिया (एमाआरएसए) आसानी से नष्ट हो जाते हैं.

कीविल ने अपने प्रयोग में लघु आकार के तांबे और स्टेनलेस स्टील की प्लेटों को स्टेरिलाइज कर उन पर करोड़ों एमआरएसए कोशिकाओं की कोटिंग कर दी और उनका लगातार अवलोकन किया. पता चला कि तांबे के प्लेटों के बैक्टीरिया कुछ ही मिनटों में नष्ट हो गए, जबकि स्टेनलेस स्टील के प्लेटों के बैक्टीरिया कई सप्ताह तक जीवित रहे. कीविल ने अपने प्रयोग से सिद्ध किया कि तांबा रोगाणुरोधी है और लगातार चौबीसों घंटे काम करता है. उनका मानना है कि अस्पतालों में स्टेनलेस स्टील के बदले तांबे या इसके संकर धातु जैसे-ब्रास आदि का प्रयोग होना चाहिए ताकि वहां घातक रोगाणुओं को नियंत्रित किया जा सके. एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व के इंटेसिव केयर यूनिटों के 51 प्रतिशत मरीज रोगाणुओं की चपेट में होते हैं.

शक्तिशाली आयन : कीविल के अनुसार तांबे से जो आयन निकलते हैं, वे नम सतह पर रोगाणुओं के श्वसन-प्रोटीन को निष्क्रिय कर समाप्त कर देते हैं. ये कोशिका के डीएनए को भी कमजोर कर देते हैं. कोलकाता यूनिवर्सिटी के केमेस्टीर के एसोसिएट प्रोफेसर दुर्गादास बनर्जी कहते हैं कि तांबे के आयन रोगाणुओं के कार्यकलापों को कई चरणों में खत्म करते हैं, इसीलिए जल के शुद्धिकरण में इन्हें 12 घंटे लगते हैं. किंतु वे आगाह करते हैं कि तांबे के पात्रों को नियमित रूप से अच्छी तरह साफ करना चाहिए ताकि तांबे के यौगिक पदार्थ न चिपके रहें, जो कि विषाक्त होते हैं.

वर्ष 1930 से पहले जब एंटीबॉयोटिक्स नहीं थे, तांबे का रोगाणुरोधी एजेंट के रूप में प्रयोग होता है. अब वैज्ञानिकों के अनुसार जब अत्यंत प्रतिरोधी बैक्टीरिया उत्पन्न हो रहे हैं तब इनके नियंत्रण के लिए तांबे जैसे शक्तिशाली रोगाणु प्रतिरोधी के प्रयोग पर विचार होना चाहिए.

बालकृष्ण काबरा 'एतेश'

लेखक संपर्क : 11, सूर्या अपार्टमेंट, रिंग रोड, राणाप्रताप नगर, नागपुर-440022 (महाराष्ट्र)

ये भी जानें

मरीज के कानूनी अधिकार

क्या आपको पता है कि एक मरीज भी उपभोक्ता है अतः उसके भी अधिकार हैं कि वह चिकित्सक को कानून के दायरे में रह कर चुनौती दे सकता है.

स्वास्थ्य सेवाएं देने वाले अस्पताल 'मेडिकल क्लीनिक कंज्यूमर प्रोटेक्शन ऐक्ट' के अंदर आते हैं. अगर डॉक्टर की लापरवाही का मामला हो या सेवाओं को लेकर कोई शिकायत

हो तो उपभोक्ता हर्जाने के लिए उपभोक्ता अदालत जा सकते हैं जैसे 'बिना बताए बच्चेदानी या कोई अंग निकाल लेना'. भारत में मेडिकल काउंसिल ऑफ़ इंडिया की जिम्मेदारी है कि वो ये सुनिश्चित करे कि डॉक्टर 'कोड ऑफ़ मेडिकल एथिक्स रेग्युलेशंस' का पालन करें, लेकिन आरोप है कि कई मामलों में ऐसा नहीं होता है.

वैसे अस्पताल में दाखिल होने के पहले मरीज को भी ये आठ बातें जो उअस्के अधिकार की हैं, जानना जरूरी है।

1. अगर कोई व्यक्ति नाज़ुक स्थिति में अस्पताल पहुंचता है तो सरकारी और निजी अस्पताल के डॉक्टरों की जिम्मेदारी है कि उस व्यक्ति को तुरंत डॉक्टरी मदद दी जाए. इसका मतलब है सांस लेने में आ रही किसी दिक्क़त को हटाना, खून के नुक़सान की जांच करना, नसों के माध्यम से मरीज़ को तरल पदार्थ देना आदि. जान बचाने के लिए ज़रूरी स्वास्थ्य सुविधाएं देने के बाद ही अस्पताल मरीज़ से पैसे मांग सकते हैं या फिर पुलिस को जानकारी देने की प्रक्रिया शुरू कर सकते हैं.

2. सभी मरीज़ों को जानकारी दी जानी चाहिए कि उनको क्या बीमारी है और इलाज का क्या नतीजा निकलेगा. साथ ही मरीज़ को इलाज पर खर्च, उसके फ़ायदे और नुक़सान और इलाज के विकल्पों के बारे में बताया जाना चाहिए. इलाज और खर्च के बारे में जानकारी अस्पताल में स्थानीय और अंग्रेज़ी भाषाओं में लिखी होनी चाहिए. अगर अस्पताल एक पुस्तिका के माध्यम से मरीज़ों को इलाज, जांच आदि के खर्च के बारे में बताएं तो ये अच्छी बात होगी. इससे मरीज़ के परिवार को इलाज पर होने वाले खर्च को समझने में मदद मिलेगी. मरीज़ के अनुरोध पर अस्पताल को लिखित में खर्च के बारे में जानकारी देनी चाहिए.

3. किसी भी मरीज़ या फिर उसके मान्यता प्राप्त व्यक्ति को अधिकार है कि अस्पताल उसे केस से जुड़े सभी कागज़ात की फ़ोटोकॉपी दे. ये फ़ोटोकॉपी अस्पताल में भर्ती होने के 24 घंटे के भीतर और डिस्चार्ज होने के 72 घंटे के भीतर दी जानी चाहिए. कोई भी अस्पताल मरीज़ को उसके मेडिकल रिकॉर्ड या रिपोर्ट देने से मना नहीं कर सकता. इन रिकॉर्ड्स में डायगनेस्टिक टेस्ट, डॉक्टर या विशेषज्ञ की राय, अस्पताल में भर्ती होने का कारण आदि शामिल हैं. डिस्चार्ज के समय मरीज़ को एक डिस्चार्ज कार्ड दिया जाना चाहिए जिसमें भर्ती के समय मरीज़ की स्थिति, लैब टेस्ट के नतीजे, अस्पताल में भर्ती के दौरान इलाज, डिस्चार्ज के बाद इलाज, क्या कोई दवा लेनी है या नहीं लेनी है, क्या सावधानियां बरतनी हैं, क्या जांच के लिए वापस डॉक्टर के पास जाना है, इन सब बातों का जिक्र होना चाहिए.

4. अगर आप किसी डॉक्टर के तरीके से ख़ुश नहीं हैं तो आप किसी दूसरे डॉक्टर की सलाह ले सकते हैं. ऐसे में ये अस्पताल को सभी मेडिकल और डायगनेस्टिक रिपोर्ट मरीज़ को उपलब्ध करवानी चाहिए.किसी दूसरे डॉक्टर की सलाह उस वक्त महत्वपूर्ण हो जाती है जब बीमारी से जान को ख़तरा हो, या फिर डॉक्टर जिस लाइन पर इलाज सोच रहा है उस पर सवाल हो.

5. इलाज के दौरान डॉक्टर को कई ऐसी बातें पता होती हैं जिसका ताल्लूक मरीज़ की निजी जिंदगी से होता है. डॉक्टर का फर्ज है कि वो इन जानकारियों को गोपनीय रखे.

6. किसी बड़ी सर्जरी से पहले डॉक्टर का फ़र्ज है कि वो मरीज़ या फिर उसका ध्यान रखने वाले व्यक्ति को सर्जरी के दौरान होने वाले मुख्य ख़तरों के बारे में बताए और जानकारी देने के बाद सहमति पत्र पर दस्तख़त करवाए और ये भी पूछे कि क्या वो सर्जरी करवाना चाहते हैं. कई बार ये सारे काम बेहद कामचलाऊ तरीक़े से किए जाते हैं और मरीज़ को सर्जरी या ऑपरेशन के बारे में, उसके खतरों के बारे में कुछ पता नहीं होता है.ऑपरेशन से पहले मरीज़ या फिर उसके रिश्तेदारों से कहा जाता है कि वो दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर कर दें.

7. कई लोगों की ये आम शिकायत है कि जब किसी अस्पताल में डॉक्टर उन्हें दवा की पर्ची देता है तो कहता है कि वो अस्पताल की ही दुकान से दवा खरीदें या फिर अस्पताल में ही डायगनॅस्टिक टेस्ट करवाएं. अस्पताल ऐसा नहीं कर सकते क्योंकि ये उपभोक्ता के अधिकारों का हनन है. उपभोक्ता को आज़ादी है कि वो टेस्ट जहां से चाहे, वहीं से करवाए. मेडिकल काउंसिल ऑफ़ इंडिया की नीति के मुताबिक़, जहां तक संभव हो, डॉक्टर को दवाई का वैज्ञानिक (जेनेरिक) नाम इस्तेमाल करना चाहिए, न कि किसी कंपनी का ब्रैंड नेम.

8. कई बार देखा गया है कि अगर अस्पताल का पूरा बिल न अदा किया गया हो तो मरीज़ को अस्पताल छोड़ने नहीं दिया जाता है. बाम्बे हाई कोर्ट ने इसे 'ग़ैर क़ानूनी कारावास' बताया है. कभी-कभी अस्पताल बिल पूरा नहीं दे पाने की सूरत में लाश तक नहीं ले जाने देते. अस्पताल की ये जिम्मेदारी है कि वो मरीज़ और परिवार को दैनिक खर्च के बारे में बताएं लेकिन इसके बावजूद अगर बिल को लेकर असहमति होती है, तब भी मरीज़ को अस्पताल से बाहर जाने देने से या फिर शव को ले जाने से नहीं रोका जा सकता.

अगर किसी मरीज़ को शिकायत है तो उसे केस के बारे में सभी सबूत इकट्ठे करने चाहिए और किसी स्थानीय उपभोक्ता संगठन से संपर्क करना चाहिए.

वैसे कोशिश यह होनी चाहिए कि अस्पताल प्रशासन और डॉक्टर से बातचीत हो ताकि समस्या का हल निकाला जा सके. लेकिन अगर कोई हल नहीं निकलता है तो राज्य मेडिकल काउंसिल में डॉक्टर और अस्पताल के ख़िलाफ़ शिकायत दर्ज करवानी चाहिए.

किसी डॉक्टर के खिलाफ़ अगर कोई शिकायत हो तो उपभोक्ता अदालत जाने से पहले ये ध्यान में रखना चाहिए कि उस डॉक्टर के खिलाफ़ उसी विशेषज्ञता वाले किसी अन्य डॉक्टर का पत्र हो जिसमें शिकायत की पुष्टि की गई हो.

बिना ऐसे प्रमाणपत्र के ऐसी शिकायत के उपभोक्ता अदालत में दर्ज होने में परेशानी हो सकती है.

कांच का पुल

चीन में पहाड़ों की ऊंचाई पर शीशे का ब्रिज बनाने का काम जारी है और इसके एक हिस्से को पर्यटकों के लिए खोला गया है.हुनान प्रान्त में ज़ांगजियाजी नेशनल फ़ॉरेस्ट पार्क में बनाए गए कॉइलिंग ड्रैगन पाथ के एक हिस्से को सोमवार को पर्यटकों के लिए खोला गया.तियानमन माउंटेन की सीधी खड़ी चट्टानों से सटे ब्रिज का फ़र्श शीशे का है और इसकी लंबाई 100 मीटर है जिसमें 99 मोड़ बनाए गए

हैं. जिन्हें ऊंचाई और गहराई से डर नहीं लगता, उनके लिए फ़ोटो खींचने के लिए ये बेहतरीन जगह है. शीशे के फ़र्श से घाटी की गहराई देखकर अच्छे-अच्छों के होश उड़ सकते हैं, कई पर्यटक दिल थामकर दीवार के सहारे चलते नज़र आए.लेकिन जो इस डर से परे हैं उनके लिए ये जगह हुनान इलाक़े का ख़ूबसूरत नज़ारा देखने की बढ़िया जगह भी है. इससे पहले ज़ांगजियाजी नेशनल फ़ॉरेस्ट पार्क में पर्यटकों के लिए 430 मीटर (1,410 फ़ीट) की ऊंचाई और 300 मीटर से ज्यादा गहरी घाटी के ऊपर झूलता शीशे का पुल पहले ही खोला गया. इसे दुनिया का सबसे लंबा शीशे का ब्रिज माना जा रहा है. इस पुल से गुज़रने पर 300 मीटर गहरी घाटी का दृश्य साफ़ नज़र आता है.जून महीने में इस पार्क के अधिकारियों ने ब्रिज की सुरक्षा को लेकर डर मिटाने के लिए लोगों से भरी एक गाड़ी को शीशे के इस ब्रिज पर उतारा था, इसके बाद सब कुछ ठीक था. हथौड़े से पीटकर भी शीशे के ब्रिज की सुरक्षा का परीक्षण कर लिया गया है.

क्या कुछ वर्षों में दुनिया से गायब हो जायेगा केला

दुनिया के 120 देशों में पैदा होनेवाला, प्रतिवर्ष लगभग 10 करोड़ टन पैदा हिनेवाला केला, पूरी दनिया के लोगों के भोजन में शुमार केला हो सकता है कि अगले 10 वर्षों में दुनिया से गायब हो जाये। वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी है कि एक संक्रमण तेजी से फैल रहा है जो केले को लुप्त कर सकता है.

कैलिफॉनिऱ्या यूनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं ने तीन ऐसी बीमारियों का पता लगाया है जिनकी वजह से केले पर विलुप्त हो जाने का खतरा मंडरा रहा है. इस खोज का फायदा यह हुआ है कि अब वैज्ञानिक केले की ऐसी नस्ल ईजाद करने में जुट गए है जिसमें इन घातक बीमारियों की प्रतिरोधक क्षमता हो.

केला उन पांच चीजों में शामिल है जो रोजाना के भोजन में सबसे आमतौर पर इस्तेमाल होती है. है. लेकिन जिस तेजी से मौजूदा बीमारियां विकसित हो रही हैं, ऐसा हो सकता है कि आने वाले 5 से 10 साल में पूरा केला उद्योग ही खात्मे के कगार पर पहुंच जाए.

सिगाटोका नाम की एक बीमारी पहले ही केले के उत्पादन को 40 फीसदी तक घटा चुकी है. सिगाटोका एक बहुत जटिल किस्म की बीमारी है जिसके अंदर तीन तरह की फुंदियां हैं. पिछली सदी में यह बीमारी अस्तित्व में आई और तेजी से फैली है. इसके दो प्रकार यूमूसाए लीफ स्पॉट और ब्लैक सिगाटोका इस वक्त केले की सबसे खतरनाक बीमारियां हैं. ब्लैक सिगोटा से तो दुनियाभर के लोग परेशान है क्योंकि इसकी वजह से उत्पादन में भारी गिरावट देखी जा रही है.

दूध की सफेदी में काला

बच्चे हों या बड़े सबको दूध के चमत्कारी गुणों के बारे में शुरू से बताया जाता है. दैनिक पोषण में दूध से मिलने वाले प्रोटीन और कैल्शियम हों या विकास के लिए बेहद जरूरी दूध के गुण, घरवाले कहते है कि दूध पियो. लेकिन मेडिकल साइंस को दूध के इतने सारे करामाती गुणों के साक्ष्य नहीं मिले है.

गाय का दूध इंसान के दूध की तरह उसके अपने बच्चे के लिए निकलने वाला प्राकृतिक द्रव्य है. इसका अर्थ हुआ कि उसमें गाय के बच्चों के विकास के लिए मौजूद जरूरी तत्व इंसान के लिए पूरी तरह सही नहीं होते. जैसे कि गाय के दूध का कैल्शियम जिसे इंसान के शरीर में पचाना बहुत मुश्किल है. गाय के दूध के कई प्रोटीन भी इंसान की त्वचा में कई तरह की एलर्जी पैदा कर सकते हैं. कुछ भी हो, दूध दुनिया भर में लोकप्रिय है और उसकी मांग बनी हुई है. डेयरी उद्योग को किसी भी तरह दूध का उत्पादन बढ़ाना होता है. वर्तमान उत्पादकता को देखें तो प्रति गाय हर साल औसतन 20,000 लीटर तक दूध निकाला जा रहा है. इससे गायों की उम्र घटती है और वे औसतन 5 साल ही जीती हैं. आमतौर पर गाय 20 साल तक जी सकती हैं.

इंसानों की ही तरह गायों में भी बच्चे के जन्म के बाद ही दूध पैदा होता है. दूध की सप्लाई लगातार बनी रहे इसके लिए इन गायों को पालने वाले गायों को बार बार गर्भवती करवाते हैं. जमा कर रखे वीर्य से गायों का कृत्रिम गर्भाधान किया जाता है. हर साल ऐसा कर गायों से तब तक दूध निचोड़ा जाता है जब तक वे ऐसा करने लायक नहीं रह जातीं. बंध्या होने के बाद गायों को बूचड़खानों में कटने भेज दिया जाता है. पैदा होने के पांच दिन के भीतर ही गाय के मादा बछड़ों को जबर्दस्ती उनकी मांओं से दूर कर दिया जाता है और उन्हें भी मांस और चमड़े के लिए बूचड़खाने भेज दिया जाता है. ऑस्ट्रेलिया जैसे कुछ देशों में तो यह कानूनन किया जाता है. कई देशों के डेयरी उद्योगों में प्रचलित है यह क्रूर परंपरा. लेकिन अपने बच्चों को खोने के बाद गाय भी दुख और मानसिक अवसाद से गुजरती है.

डेयरी और पशुपालन उद्योग में मां-बच्चे जैसे किसी नैसर्गिक रिश्ते के लिए कोई जगह नहीं. ऑस्ट्रेलिया में बछड़ों को काटने का तरीका भी काफी क्रूर होता है. पांच दिन से कम के बछड़ों को एक जगह इकट्ठा किया जाता है और फिर बारी बारी से मौत के घाट उताया जाता है.इन क्रूर तरीकों के खिलाफ विरोध जताया गया तो यूरोप के पशुपालक और ब्रीडरों ने गाय के बछड़ों को कृत्रिम दूध देकर कैटल के रूप में इस्तेमाल करने का रास्ता निकाला, बच्चे फिर भी मां से तो दूर ही रहे. जब भी दूध की कीमतें गिरती है तो उत्पादन का खर्च बचाने के लिए किसान ज्यादा बछड़ों को मारने लगते है.

संकलन : पूनम सेन, मुंबई

विज्ञान समाचार

नाभिकीय संलयन पर शोध

आइडिया है कृत्रिम सूरज पैदा करना जो ऊर्जा की समस्याएं मिटा दे. जर्मनी के ग्राइफ्सवाल्ड शहर के रिएक्टर वेंडेलश्टाइन में रिसर्चरों को 10 करोड़ डिग्री गर्म परमाणु विस्फोट का नियंत्रण करना था. अब से पहले यह संभव नहीं था. परमाणु शोध संयंत्र वेंडेलश्टाइन 7 एक्स में पहले प्लाज्मा का सृजन किया गया. एक कंट्रोल सेंटर के निर्देशन में 10 मिलीग्राम हीलियम एक वैक्यूम चैंबर के चुम्बकीय क्षेत्र में भेजी गयी और उसे 10 लाख डिग्री तक गर्म किया गया. पहले परीक्षण के बाद संयंत्र की डाइरेक्टर सिबेले गुंटर ने कहा, यह एक उम्दा दिन है. जर्मनी के मैक्लेनबुर्ग प्रांत में स्थित माक्स प्लांक प्लाज्मा फीजिक्स इंस्टीट्यूट में नाभिकीय संलयन के उस परीक्षण की शुरुआत हो गई है, जिसका लक्ष्य कार्बन मुक्त बिजली बनाना है. जर्मनी के लिए यह महत्वपूर्ण परीक्षण है. परीक्षण कारखाना बनाने के 19 साल बाद परीक्षणों की शुरुआत की. नाभिकीय संलयन के लिए पिछले दिनों पहला प्लाज्मा बनाया गया, लेकिन हीलियम का इस्तेमाल कर ज़नवरी 2017 में पहला हाइड्रोजन प्लाज्मा बनाया जाएगा. 1 अरब यूरो महंगे इस टेस्ट कारखाने में रिसर्चर सूरज की प्रक्रियाओं की तरह होने वाले नाभिकीय संलयन पर शोध करेंगे ताकि उसका इस्तेमाल धरती पर ऊर्जा पैदा करने के लिए किया जा सके और बाद में बिजलीघरों में परमाणु कणों का संलयन कर बिजली पैदा की जा सके. ग्राइफ्सवाल्ड के इंस्टीट्यूट में परमाणु कणों के संलयन की योजना नहीं है. वेंडेलश्टाइन 7 एक्स टेस्ट संयंत्र जापान के एक संयंत्र के साथ दुनिया का सबसे बड़ा संलयन टेस्ट संयंत्र है. संस्थान के प्रमुख क्लिंगर ने कहा कि हीलियम प्लाज्मा बनाना, परीक्षण का रिहर्सल है. इसके लिए वैक्यूम चैंबर में माइक्रोवेव हीटर से अंतर्गत विरल हीलियम को गर्म किया जाता है. इसके जरिए गैस का आयनीकरण हो जाता है और वह प्लाज्मा का रूप ले लेती है. यह संस्थान 2017 से प्लाज्मा बनाने के लिए डॉयटेरियम का इस्तेमाल शुरू करेगा. इस हाइड्रोजन आइसोटोप के इस्तेमाल से बिजली बनाने की प्रक्रिया में बहुत कम रेडियो सक्रियता उत्पन्न होती है. लेकिन ऐसा करने से पहले और तकनीकी शर्ते पूरी करनी होगी. माक्स, प्लांक प्लाज्मा फीजिक्स संस्थान में करीब 500 कर्मचारी काम करते हैं. इसका खर्च यूरोपीय संघ और जर्मनी सरकार के अनुदानों के अलावा प्रांतीय सरकार भी उठाती है.

गुरूत्वाकर्षण तरंगों की खोज - आइंस्टीन के सापेक्षता के सिद्धांत की खोज के ठीक 100 वर्ष बाद वैज्ञानिकों ने बेहद अहम खोज की है. वैज्ञानिकों ने गुरूत्वाकर्षण तरंगों की खोज की है. इन तरंगों का सबसे पहले पता 12 सितंबर 2015 को पता चला. 11 फरवरी 2016 को गुरूत्वाकर्षण तरंगों की खोज लीगो नाम के प्रयोग के द्वारा पता लगाया गया है. गुरूत्वाकर्षण तरंगों की उपस्थिति को प्रमाणित करने में एक सदी लग गयी और 11 फरवरी 2016 को लीगो ऑब्जर्वेटरी के शोधकर्ताओं ने सिद्ध किया कि दो श्याम विवरों (Black Holes) की टक्कर से निकलने वाली तरंगें वास्तव में गुरूत्वाकर्षण तरंगें ही हैं. न्यूटन के गुरूत्वाकर्षण के खोज के बाद इस दिशा में बेहद अहम शोध है. अंतरिक्ष वैज्ञानिकों के अनुसार आइंस्टीन के ज्यादातर सिद्धांत (सापेक्षतावाद के सिद्धांत) प्रयोगों के द्वारा सत्यापित हो चुके हैं. सिर्फ एक सिद्धांत का प्रयोगों द्वारा सत्यापन नहीं हो पाया था, वो है गुरूत्व तरंगों का अस्तित्व. वैज्ञानिकों ने गुरूत्व तरंगों को प्रयोगों के द्वारा साबित कर दिया. खोज से न सिर्फ आइंस्टीन की थ्योरी सही साबित हुई है, बल्कि इससे पहली बार 2 टकराने वाले ब्लैक होल की भी पुष्टि हुई है. इस नई खोज में खगोलविदों ने अत्याधुनिक एवं बेहद संवेदनशील लेजर इंटरफेरोमीटर ग्रेविटेशनल वेब ऑबजर्वेटरी (LIGO) या लीगो का इस्तेमाल किया, जिसकी लागत 1.15 अरब डॉलर है. लीगो की मदद से दूर दो ब्लैक होल के बीच हुई हालिया टक्कर में पैदा हुई गुरूत्वीय तरंग का पता लगाया गया. लेजर इंटरफर्मेटर ग्रेविटेशनल-वेब ऑब्जरवेटरी (लीगो) एक भौतिकी शास्त्र का प्रयोग है जो ग्रेविटेशन बेव का पता लगाने के लिए किया गया है. यह एमआईटी (MIT), काल्टेक (Caltech) तथा बहुत से अन्य संस्थानों का सम्मिलित परियोजना है. यह अमेरिका के नेशनल साइंस फाउण्डेशन (NSF) द्वारा प्रायोजिक है. 1992 में शुरू किए गए इस अनुसंधान की सफलता अब मिली है.

प्रस्तुति-संजय गोस्वामी
एन.आर.बी., मुंबई

वैज्ञानिक राजभाषा वर्ग पहेली -३

1		2		3	4	5
	6	7				
			8	9		10
11	12	13		14		
15		16		17	18	
19		20	21		22	23
24		25	26	27	28	

बाँए से दाँए

1.जीवधारियों की सबसे छोटी संरचनात्मक इकाई (3)
2.समय, युग (2)
7.दोस्त (2)
9.थैली, पैसा रखने की जगह (2)
12.द्रव्य (3)
14.माथा, मस्तक (2)
15.चाह (2)
16.गीला (2)
17.दर, कीमत (2)
18.काबू (2)
19.क्रिकेट में बटोरे जाते हैं (2)
20.परमाणु ऊर्जा विभाग के वर्तमान अध्यक्ष (3,2)
21.सौ बिलियन (3)
24.यात्रा (3)
25.नस, नाड़ी (2)
26.बीता हुआ (2)
27.पर्यंत, देखना (2)
28,हाथ, राजस्व (2)

ऊपर से नीचे

1.विकिरण चिकित्सा में प्रयोग की जाने वाली एक धातु (3)
2.कलपक्कम, तमिलनाडु में स्थित थोरियम प्रयोग करने वाला 30 किलोवाट का एक अनुसंधान रिएक्टर (3)
3.भारत के प्रसिद्ध परमाणु वैज्ञानिक (1909-1966) (2,1,2)
4.इच्छाशक्ति, आत्मविश्वाश (4)
5.भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र का 100 मेगावाट का मुख्य अनुसंधान रिएक्टर (2)
6..... विज्ञान जो पौधों की जानकारी से संबंधित है (3)
8.मतलब, धन , हेतु (2)
10.प्रलय, ध्वंस, बरबादी
11.भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र का 2010 में बंद किया गया 40 मेगावाट का अनुसंधान रिएक्टर (4)
13.भिक्षा, खैरात (2)
17.वजन (2)
19.जूस, तरल पदार्थ, अर्क (2)
20.जंगल का राजा (2)
21.पक्षी (2)
22.बगुला (2)
23.स्वर, आवाज, देवता (2)

पहेली निर्माता : **सत्यवान बंसल**

वैज्ञानिक राजभाषा वर्ग पहेली - 2 का सही हल

1 र	8 त	14 न	19 कु	मा	र	32 वि
2 त	9 ज	15 ग	20 टी	च	27 र	33 वि
3 ज	10 पु	ण्य	21 र	25 म	28 जा	34 न
4 गा	11 य	16 ज	22 मा	न	क	य
5 र	12 त	ल्ली	23 न	26 न	29 हीं	न
6 द	ल	17 ना	24 नी	ति	30 ग	त
7. म	13 खी	18 जा	य	जा	31 धा	न

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद

पंजीकृत संख्या: F 2005
कार्यालय: हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, सूचना प्रभाग
सेंट्रल कांप्लेक्स, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई 400085
दूरभाष: 022-25591413 ईमेल: dnsingh@barc.gov.in / hvsp@barc.gov.in

वैज्ञानिक R. No. : 18862/70

दिल्ली नयी दिल्ली महाराष्ट्र हिमाचल प्रदेश राजस्थान व उ प्र के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों व कॉलेजों के लिये स्वीकृत

संरक्षक
श्री कमलेश न, व्यास
निदेशक, भा.प.अ.के.

कार्यकारिणी समिति
अध्यक्ष
श्री हृषीकेश मिश्र
25593698
विशिष्ट परामर्शक
श्री प्रमोद भागवत
25595115
उपाध्यक्ष
श्री कवींद्र पाठक
25594475
सचिव
डॉ. कुनवंत सिंह
25595378
सहसचिव
श्री धडीगकुमार रामटेके
25595036
कोषाध्यक्ष
श्री दीनानाथ सिंह
25591413
सदस्य
श्री विपुल सेन
(मुख्य संपादक)
25591184
श्री कपिलदेव अंबष्ट
25594448
श्री राजेश कुमार
25594923
श्री प्रवीण दुबे
25592236
श्री अनिल अहिरवार
25592626
श्री संजय गोस्वामी
25597977
श्री सत्यवान बंसल
(मुख्य व्यवस्थापक)
25593826
पदेन सदस्य
श्री रामप्रकाश विश्वकर्मा
संयुक्त निदेशक (रा.भा.)
25593802

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2016

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद द्वारा आयोजित डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं. लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर मौलिक एवं आधुनिक जानकारी होनी चाहिये. लेख का अप्रकाशित होना अनिवार्य है. मूल्यांकन में मौलिक जानकारी के साथ-साथ रेखाचित्रों/ फोटोग्राफ, तालिकाओं इत्यादि को समुचित महत्त्व दिया जाता है. चित्रों को अलग से सफेद कागज/ट्रेसिंग पेपर पर काले पेन से बनायें. फोटोग्राफ ब्लैक एंड व्हाइट हो तो उचित रहेगा. इन्हें लेख के अंत में संलग्न कर दें. नीचे दिये गये पते पर कृपया टंकित अथवा स्पष्ट हस्तलिखित प्रति (लगभग 3000-4000 शब्द) भेजें. लेख ईमेल द्वारा पी.डी.एफ./जे.पी.जी. अथवा वर्ड फाईल (केवल यूनीकोड) में भी भेजे जा सकते हैं.

अंतिम तिथि : 15 दिसंबर 2016

पुरस्कार

प्रथम – रु 8,000/-

द्वितीय – रु 6,000/-

तृतीय – रु 4,000/-

प्रोत्साहन पुरस्कार (3) - रु 3,000/- प्रत्येक
(जिसमें अहिंदी वर्ग के लिये एक)

श्री डी. एन. सिंह
प्रतियोगिता संयोजक
एन.आर.पी.सी.ई.डी NRPSED; NRB
ओ.टी.एफ. बिल्डिंग, पी.पी. कांप्लेक्स
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र मुंबई-400085

भारतीय गौरव के रचयिता विक्रम अंबालाल साराभाई

जन्म	१२ अगस्त १९१९, अहमदाबाद, भारत
मृत्यु	३० दिसम्बर १९७१ (उम्र ५२),कोवलम , तिरुवनंतपुरम, केरल, भारत
क्षेत्र	भौतिकी
संस्थाएँ	भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन, भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला परमाणु ऊर्जा आयोग (भारत)
मातृसंस्था	गुजरात कॉलेज, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय
मार्ग दर्शक	डा. सी. वी. रमन
प्रसिद्ध कार्य	भारत का अंतरिक्ष कार्यक्रम, भारत का परमाणु कार्यक्रम
पुरस्कार	पद्म भूषण (१९६६), पद्म विभूषण (मरणोपरांत) (१९७२)

* 'वैज्ञानिक' में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है. * वैज्ञानिक में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं.वि.सा.परिषद के पास सुरक्षित हैं. * 'वैज्ञानिक' एवं हिं.वि.सा.परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय मुंबई के न्यायालय में ही होगा. * 'वैज्ञानिक' में प्रकाशित सामग्री का आप बिना अनुमति लिए उपयोग कर सकते हैं. परंतु इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य होगा कि अमुक सामग्री 'वैज्ञानिक' से साभार.

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, भा.प.अ.केंद्र ट्रांबे, मुंबई 85 के लिए श्री विपुल सेन द्वारा सम्पादित व
निर्भय पथिक (संपर्क : Email : nirbhaypathik@gmail.com फोन : 24153784, 9869022787, 32201260) से मुद्रित व प्रकाशित.